चन्दामामा
नवम्बर १९६६
75
P

अरे,
इसे तो सर्दी
लग गयी है!

बस हल्के हल्के वेपोरब मलिये इसकी गरमाहट से मुन्ने को फ़ौरन आराम मिलता है... आसानी से साँस लेने लगता है और रात भर चैन की नींद सोता है।

आप ही मुन्ने को आराम दे सकती हैं। जब उसे सर्दी लगी हो बस आप ममताभरे हाथों से विक्स वेपोरब छाती, गले, नाक और पीठ पर मलिये। देखते ही देखते भारीपन दूर होने लगता है और आपका मुन्ना फिर आसानी से साँस लेने लगता है क्योंकि विक्स वेपोरब की आरामदायक दवाइयां केवल सात सेकण्डों में ही सर्दी से जकड़े भागों पर असर करने लगती हैं।

अब मुन्ने को आराम से बिस्तर पर सुला दीजिए। जब कि मुन्ना चैन से सोता है, वेपोरब अपना असर रात भर करता रहता है। सुबह तक सर्दी जुकाम दूर हो जाता है और आपका प्यारा लाडला खुश और तन्दुरस्त उठता है।

विक्स वेपोरब सर्दी जुकाम के लिए आज रात ही मलिये

चन्दामामा
संचालक: चक्रपाणी
हमने अब एक नया धारावाहिक प्रारम्भ किया है—"कृष्णावतार"। इससे पहिले हम रामायण और महाभारत का कथा रूप "चन्दामामा" में दे चुके हैं। राम और कृष्ण को लेकर हमारे देश में कितने ही पन्थ बने हुए हैं, कितना ही साहित्य है। इसलिए हम आशा करते हैं कि इस धारावाहिक से भी पाठकों का लाभ होगा।
वर्ष: १८ नवम्बर १९६६ अंक: ३
CHITRA

भारत का इतिहास

१८ वीं सदी में, हिन्दुओं का पुनरुत्थान भारत के इतिहास में एक मुख्य घटना है। ह्रास होते मुगल साम्राज्य में राजपूत, सिक्ख, जाट और मराठाओं ने अपने अपने राज्य स्थापित कर लिए थे।

१७०८ में गुरु गोविन्द की एक अफ़गान द्वारा हत्या कर दी गई। उनकी हत्या के बाद सिक्खों का सरदार बन्दा बना। उसने वजीर खान की हत्या करवा दी, जिसने गोविन्द के बच्चों की हत्या करवाई थी। उसने सिरहिन्द, यमुना, और सतलज के मध्य के प्रान्त को अपने वश में कर लिया। पर वह अपने विजय का बहुत दिनों तक लाभ न उठा सका। मुगल बादशाह ने उसे पकड़ लिया। उसके लड़के को उसके देखते हुए ही उसने मरवा दिया और उसे हाथियों द्वारा कुचलवा दिया। पर इससे वह सिक्खों का पूरी तरह दमन न कर सका। कपूरसिंह नामक व्यक्ति ने "दल खालसा" की स्थापना की। सिक्खों ने रावी नदी के तट पर दलेवाल किला बनवाया और धीमे धीमे बलवान होते गये। नादिरशाह के आक्रमणों के कारण उनकी शक्ति बढ़ती गई।

परन्तु मुगल साम्राज्य के अवशेष पर, अपनी पताका फहरानेवालों में सबसे अधिक शक्तिशाली मराठे थे। शिवाजी के लड़के शाहुजी का, दिल्ली के बादशाह के यहाँ से रिहा कर दिये जाने के बाद, ताराबाई से झगड़ा हुआ। युद्ध भी हुए। इस युद्ध में शाहु जी को, कोंकण देश के चितपावन ब्राह्मण, बालाजी विश्वनाथ की बड़ी मदद मिली।

बालाजी विश्वनाथ ने अपना जीवन एक छोटे मुनीम के तौर पर शुरु किया था।

वह अपने कार्य चातुर्य और बुद्धि के बल पर तरक्की करता गया। १६ नवम्बर १७१३ में वह शाहु जी द्वारा पेशवा (प्रधान मन्त्री) नियुक्त किया गया। पेशवा के पद से (प्रतिनिधि) का पद ऊँचा था। फिर भी बालाजी और उसके लड़के बाजीराव के कारण, जो बहुत समर्थ थे, मराठा साम्राज्य में, छत्रपतियों से भी अधिक प्रमुखता पेशवाओं को मिली।

मुगल साम्राज्य के पतन का मराठाओं ने खूब फायदा उठाया। हुसेन अलि जब दक्खन आया, तो बालाजी विश्वनाथ ने उससे एक मुख्य सन्धि की और बादशाह से उसका समर्थन भी करवाया। हुसेन की सन्धि के अनुसार शाहु जी को वे प्रान्त वापिस कर दिये गये, जो मुगलों ने शिवाजी से जीत लिए थे। यही नहीं, उनको खानदेश, गोन्द्वाना, बिरार, हैदराबाद कर्नाटक प्रान्तों में, जो भाग मराठाओं ने जीते थे, वापिस दे दिये गये। हुसेन इस प्रकार मराठाओं का सहयोग चाहता था। दक्खिन में छ सूबों में चौथ वसूल करने का हक भी मराठाओं को मिला। इसके बदले बादशाह के उपयोग के लिए १५,००० घोड़े पालने, दस लाख रुपया सालाना कर देने और दक्खन में शान्ति की स्थापना करने की जिम्मेवारी मराठाओं को दी गई। इससे मराठाओं को सम्पूर्ण स्वतन्त्रता तो नहीं मिली, जिसके स्वप्न शिवाजी ने देखे थे, चूँकि मराठाओं ने दिल्ली की सल्तनत को स्वीकार कर लिया था। फिर भी यह सन्धि महाराष्ट्र के इतिहास में एक मुख्य घटना है। इसके कारण सरकारी करों में मराठे हिस्सेदार बन गये। उनके हक्क एक प्रान्त में मान लिए गये।

दिल्ली में सैय्यद के विरोधियों को बलवान होता देख, उनका दमन करने सैय्यद हुसेन अलि, दिल्ली पर जब आक्रमण करने गया, अपने नये साथियों को भी साथ लेता गया, उसने फरुखसियर को गद्दी से उतारा और उसकी जगह एक और कठपुतले को गद्दी पर बिठाया। १७१९ में मराठाओं का दिल्ली पर हमला करना भी उनके इतिहास में एक मुख्य घटना है। इसके आधार पर बालाजी विश्वनाथ ने महाराष्ट्र साम्राज्य के निर्माण के लिए आवश्यक योजना बनवाई। मराठाओं का बल और दृष्टियों से भी बढ़ा। राजाराम के समय, जब जागीरें पुनः बनीं, तो शूरवीर मराठों ने अपने कुछ स्वतन्त्र राज्य भी कायम कर लिए।

पेशवा का पद बालाजी विश्वनाथ के वंशजों को मिला। १७२० में, जब बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हुई, तो उसका नवयुवक लड़का बाजीराव पेशवा बना। वह युद्धतन्त्र में ही नहीं, शासन में भी बड़ा कुशल था। वह जानता था कि मुगलों का पतन होता देख, हिन्दु महाराजाओं की सहायता से, मराठाओं की शक्ति बढ़ाई जा सकती थी। उसने बड़ी कुशलता से, महाराष्ट्र साम्राज्य की स्थापना के लिए आवश्यक विधान तैयार किये। नर्मदा नद्दी को पार करके, वह मुगल साम्राज्य के केन्द्र पर हमला करना चाहता था। "पेड़ सूख रहा है। तने को ही अगर काट दें टहनियाँ स्वयं सूख जायेंगी और हमारी धाक कृष्णा नदी से, सिन्धु नदी तक फैलेगी।" उसने शाहु को सलाह दी।

नेहरू की कथा

[२८]

जवाहर जी जब कान्ग्रेस के अध्यक्ष चुने गये, तो उनके पिता मोतीलाल सब से अधिक खुश हुए। उन दोनों के राजनैतिक दृष्टिकोण भिन्न थे। कभी कभी मोतीलाल अपने लड़के की आलोचना भी करते थे। पर अगर कोई और जवाहरलाल नेहरू की आलोचना करते, तो उनको वह बिल्कुल गँवारा न होता। उनका पुत्र-प्रेम विलक्षण था।

कहा जा सकता है कि बहुत छोटी उम्र में ही, जवाहर जी को यह गौरव मिला था। तब उनकी उम्र चालीस वर्ष की थी। उस उम्र में उनके अलावा दो ने ही कान्ग्रेस के अध्यक्ष पद को अलंकृत किया था—गोखले और आज़ाद।

लाहौर का कान्ग्रेस अधिवेषन पास आ रहा था। राजनैतिक क्षेत्र में बिना व्यक्तियों के सम्बन्ध के एक वातावरण बनता जा रहा था। परिस्थिति विषम होती जाती थी। शायद इसको रोकने के लिए ही, वायसराय लोर्ड इरविन ने राऊन्ड टेबल कोनफरेन्स के बारे में एक घोषणा की। यह घोषणा बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण थी, उसमें, भारत को जो आशाएँ दिखाई गई थीं, वे बड़ी थीं, या छोटी, इस बारे में कुछ न कहा जा सकता था। पर जवाहर जैसे कुछ कान्ग्रेस नेता पहिले ही जानते थे कि उससे कोई फ़ायदा न होनेवाला था।

वायसराय की घोषणा होते ही, दिल्ली में "नेताओं की सभा" की आयोजना की गई। उसमें कई पार्टियों के प्रतिनिधि

बुलाये गये। उनमें गान्धी जी, मोतीलाल, विठल भाई पटेल, तो थे ही, सर तेज बहादुर सप्रू से उदार दल के नेता भी थे। वायसराय की घोषणा का कुछ शर्तों के साथ समर्थन हुआ और एक सामूहिक प्रस्ताव भी तैयार किया गया। कहा गया कि शर्तें आवश्यक थीं और उनके स्वीकार किये जाने पर ही, सरदार से सहयोग किया जा सकता था, इन शर्तों में भारत को पूर्ण डोमिनियन स्टेट्स देना, कान्ग्रेस को अधिक प्रतिनिधित्व देना और राजनैतिक कैदियों की रिहाई, आदि थे।

इस तरह के प्रस्ताव का सब के द्वारा समर्थित किया जाना ही एक बड़ी बात थी। पर कान्ग्रेस के लिए यह विजय न थी। यह बात बाद में हुई, कान्ग्रेस की कार्यकारिणी समिति में साफ़ हो गई। फिर कान्ग्रेस का अधिवेषन होने तक ही इस प्रस्ताव का पालन किया जाए, यह नेताओं ने तय किया।

पर यह उदार दल के लोगों के लिए बड़ी विजय थी। यद्यपि प्रस्ताव के किसी भी शर्त को अमल में न लाया गया था। कान्ग्रेस के नेता जेल में थे। परन्तु वे सरकार का सहयोग कर रहे थे।

जवाहरलाल नेहरू आदि को पहिले ही इसकी आशंका थी। परन्तु कान्ग्रेसी नेताओं का विश्वास बना रहा कि सामूहिक कार्य व्यर्थ नहीं जायेगा। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता के उद्देश्य की उपेक्षा देखकर जवाहरलाल नेहरू बड़े चिन्तित हुए। उन्होंने गान्धी जी को सूचित किया, कि वे कान्ग्रेस के पद से त्यागपत्र देना चाहते थे। पर गान्धी जी के उत्तर ने उनको चिन्ता मुक्त कर दिया।

लाहौर कान्ग्रेस के होने से पूर्व सरकार से समझौता करने के लिए, वायसराय से

मिलने की व्यवस्था की गई। बातचीत हुई। पर नतीजा कुछ भी न निकला। कान्ग्रेस की दी हुई अवधि समाप्त हो गई। सिवाय इसके कि यह घोषित किया जाये, कि सम्पूर्ण स्वतन्त्रता ही कान्ग्रेस का लक्ष्य था और उसके लिए आवश्यक वातावरण तैयार करने के और कोई मार्ग न रह गया था।

लाहौर कान्ग्रेस अधिवेषन के पूर्व नागपूर में अखिल भारत ट्रेड यूनियन कान्ग्रेस हुई। उसके अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू थे। एक ही व्यक्ति का इन दो महासभाओं की अध्यक्षता करना, एक असाधारण बात थी। जवाहरलाल नेहरू का ख्याल था कि ऐसा करने से कान्ग्रेस को और साम्यवाद की ओर झुकाया जा सकता था और श्रमिक वर्गों को राष्ट्रीय आन्दोलन में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जा सकता था। परन्तु श्रमिक वर्ग के नेता, कान्ग्रेस के नेताओं का विश्वास करने की स्थिति में न थे। कान्ग्रेस के नेता और मध्यमवर्ग के लोग कार्मिकों की दृष्टि में प्रगति के विरोधी थे। ट्रेड यूनियन कान्ग्रेस में उदारदल और उग्रदल
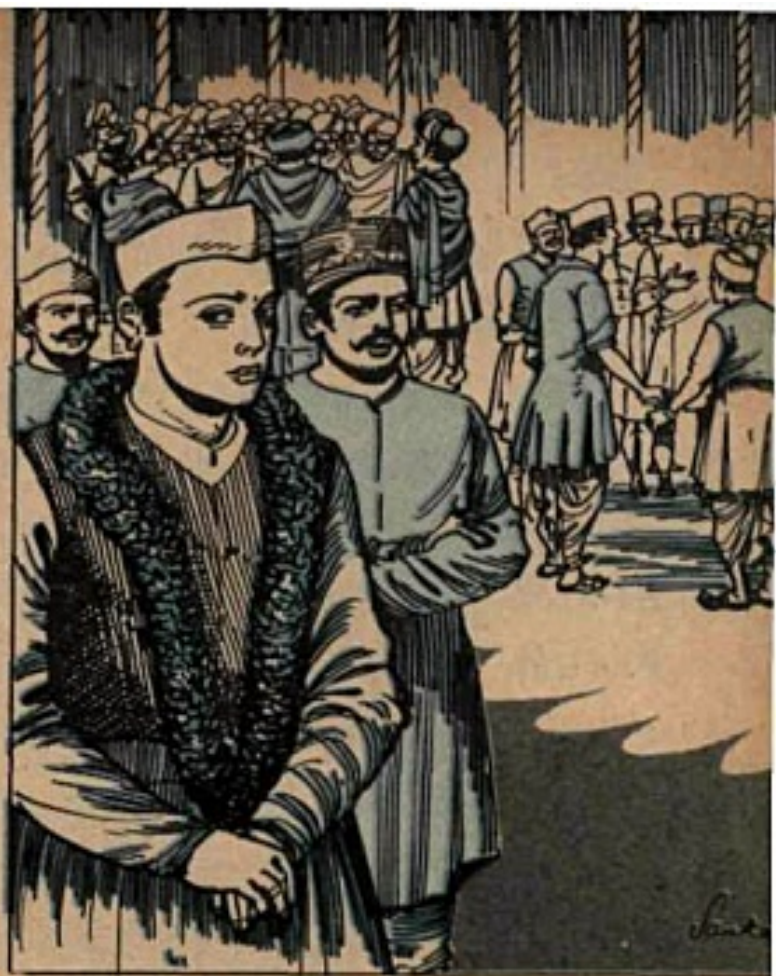
में मुठभेड़ हुई तो जवाहरलाल नेहरू को श्रमिक कार्मिक राजनीति का अनुभव न होने के कारण तटस्थ रहना पड़ा।

लाहौर कान्ग्रेस अधिवेषन जवाहरलाल नेहरू के जीवन में एक मुख्य घटना थी। पहिली बार वे उस तरह के अधिवेषनों में नेता का कार्य कर रहे थे। लाहौर के नागरिकों ने उनका अपूर्व सम्मान किया। वह और कान्ग्रेस के अधिवेषनों की तरह न था। परिस्थिति बड़ी उलझी हुई थी और उद्रेकपूर्ण थी। कान्ग्रेस एक मुख्य प्रस्ताव करके देश में एक विशाल

आन्दोलन चलाने जा रही थी। कितनों के ही जीवन बदलनेवाले थे।

कान्ग्रेस के इस प्रस्ताव का कि सम्पूर्ण स्वतन्त्रता ही देश का उद्देश्य था और उसके लिए संग्राम प्रारम्भ किया जाना चाहिए, सर्वमत से आमोदन हुआ। दिसम्बर ३१ की आधी रात को जब कि पुराना साल गुजर रहा था और नया साल आ रहा था, यह प्रस्ताव पारित हुआ। संग्राम की रूपरेखा निर्धारित करने का अधिकार कान्ग्रेस कमेटी को दिया गया। पर सब जानते थे कि अन्तिम निर्णय गान्धी जी ही करेंगे।

इस अधिवेषन की एक और विशेषता थी, इस में सरहद प्रान्त से आये हुए युवकों ने भाग लिया और कान्ग्रेस से इस प्रकार उन्होंने सम्बन्ध स्थापित किये। इसलिए १९३० के बाद आन्दोलनों में और प्रान्तों के साथ सीमान्त प्रान्तों ने भी हिस्सा लिया।

लाहौर कान्ग्रेस के समाप्त होते ही मोतीलाल जी ने वक्तव्य दिया कि कान्ग्रेसवादी शासनसभाओं और केन्द्रीय कोन्सिलों से इस्तीफा दे दें। सिवाय कुछ व्यक्तियों के सबने इस्तीफा दे दिया।

"परन्तु भविष्य अगम्य-सा ही था। कान्ग्रेस के निर्णय के प्रति जनता की क्या प्रतिक्रिया होगी, इसका अनुमान करना मुश्किल था। पर हम पीछे नहीं हट सकते थे। हमने आखिरी निश्चय कर लिया था। जनता की प्रतिक्रिया को आँकने के लिए जनवरी २६ को स्वतन्त्रता दिवस घोषित किया गया। उस दिन सब को स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए प्रण करना था।" ये जवाहरलाल नेहरू के शब्द हैं।

पाताल दुर्ग

[६]

[कुम्भीर, कालशम्बर दोनों एक एक गुफा में भाग गये। सोमक के छोड़े हुए बाण से उग्रसेन घायल हो गया। उग्रसेन ने जिनको राजद्रोही घोषित किया था उन धूमक और सोमक को कुन्तल देश के मन्त्री गंगाधर ने अभयदान दिया। वे दोनों पेड़ की टहनियों से नीचे कूदे। उसके बाद—]

बाण और तल्वार लिए धूमक और सोमक को देखते ही कदम्ब राजा उग्रसेन ने काँपते हुए कहा—"महामन्त्री, आपका इनको अभयदान देना बिल्कुल ठीक नहीं है। ये अराजकतावादी हैं, जो एक देश के विरुद्ध बगावत कर सकते हैं, कैसे यह विश्वास किया जाये कि वे दूसरे देश में बगावत न करेंगे!"

इतने में धूमक और सोमक भागे भागे मन्त्री गंगाधर के पास गये। उसके सामने उन दोनों ने साष्टान्ग किया।

गंगाधर ने उनको उठने के लिए कहा—"अब तुम दोनों सचमुच योद्धा मालूम होते हो। मैंने यह कभी विश्वास न किया था कि तुम पितृ और भ्रातृ हन्तक हो, तुम्हें योद्धाओं के अनुरूप पोशाक

दिलवाऊँगा। तुम दोनों में से किसने महाराजा को घायल किया था?"

"प्रभू! मैंने इससे इस दुष्ट राजा के गले पर निशाना लगाने के लिए कहा था। पर इसको इस पर दया आ गई और इसने इसके हाथ पर बाण मारा।" धूमक ने कहा।

सोमक आँखें लाल करके उग्रसेन की ओर मुड़कर कुछ कहने ही वाला था कि मन्त्री गंगाधर ने उसे रोकते हुए उग्रसेन से कहा—"महाराज, ये आपसे बदला ले रहे हैं। आपने उन पर अत्याचार किया था। उन्होंने आपको घायल करके अपना बदला ले लिया। खैर, जो हुआ सो हुआ, अब आप कहिये कि आपने इन्हें माफ कर दिया है। यह बदले की बात इसके साथ खतम हो जायेगी।"

"महामन्त्री! राजद्रोहियों को माफ कर दें। यह कैसी राजनीति है? उन्होंने किसानों को भड़काया था कि वे कर न दें। यूँ बगावत की थी।" उग्रसेन ने गुस्से में कहा।

"प्रभू! इस उग्रसेन और इसके मन्त्री के लिए बस कर इकट्ठा करना ही शासन है। इसके अलावा वे कुछ नहीं जानते। वे भाग गये नहीं, तो कुम्भीर और कालशम्बर से भी ये कर वसूलते।" धूमक ने दान्त पीसते हुए कहा।

कुम्भीर और कालशम्बर का नाम सुनते ही मन्त्री गंगाधर ने चकित होकर पूछा—"वे दोनों कौन हैं? महाराजा की लड़की को क्या वे ही उठा ले गये थे? बताओ।"

धूमक और सोमक ने रात को गुफाओं के सामने जो कुछ हुआ था वह मन्त्री को बताया।

गंगाधर ने अनुमान किया कि जिसने कुम्भीर जैसे राक्षस का सींग तोड़ दिया था, वह कालशम्बर अवश्य कोई बड़ा मन्त्रवेत्ता होगा।

यही नहीं, जब मान्त्रिक की ये बातें.... मैं यहाँ एक महावीर की चिकित्सा करके उसको ठीक करके....यह घायल महावीर मेरा पुत्र भी हो सकता है,—यह सोच गंगाधर ने धूमक और सोमक से वह गुफा दिखाने के लिए कहा—जहाँ वह मान्त्रिक दिखाई दिया था।

धूमक और सोमक गुफाओं की ओर चले। मन्त्री गंगाधर कुछ सैनिकों के साथ उनके पीछे पीछे गया। उग्रसेन भी कराहता, तड़पता उनके पीछे चला।

धूमक और सोमक ने एक गुफा के सामने खड़े होकर कहा—"प्रभू! मान्त्रिक इस गुफा से बाहर आया और हाथ पर बाण लगते ही अन्दर भाग गया और इस गुफा में कुम्भीर राजकुमारी को लेकर गया था।"

"इस राक्षस को घेरकर पकड़ लो महामन्त्री। आपने कहा था कि यहाँ आज्ञा देनेवाले आप हैं। इसलिए आप सैनिकों को आज्ञा दीजिये न?" उग्रसेन ने कहा

"महाराज! मैं नहीं सोचता कि यह राक्षस और यह मान्त्रिक इतने मूर्ख हैं कि अभी तक इस गुफा में छुपे रहें। फिर भी अच्छा है कि हम सावधान रहें।"

मन्त्री गंगाधर ने सैनिकों को सावधान किया। कुछ सैनिक भाले उठाकर धीमे धीमे उस गुफा में गये, जिसमें राक्षस गया था।

गुफा में अन्धेरा था। मशालें जलाकर भाले लेकर ज्योंहि कुछ लोग अन्दर

गये, त्योंहि एक काली आकृति ऊपर से कूदी। तुरत सैनिकों में हो हल्ला मचा। सैनिकों में भगदौड़ मच गई। "राक्षस, राक्षस" चिल्लाते चिल्लाते वे बाहर भागे।

मन्त्री गंगाधर ने उनको रोककर पूछा— "क्या राक्षस को तुमने देखा था? या उसका चिल्लाना सुना था?"

"प्रभू! गुफा में बड़ा जबर्दस्त अन्धेरा है। न मालूम कैसी कैसी आवाजें सुनाई पड़ रही हैं। फिर भी हम आगे बढ़े। वह बिना आवाज़ किये यकायक आगे के मशालचियों पर कूदा और उनको उसने पकड़ लिया।" सैनिकों में से एक ने डरते हुए कहा।

मन्त्री गंगाधर को इन बातों पर विश्वास न हुआ। कुछ भी हो, गुफा में दो सैनिक आफत में थे।

वह अपने सैनिकों के सरदार को बुलाने ही वाला था कि धूमक और सोमक गुफा के पास के मशालों को उठाकर—"अरे कुम्भीर राक्षस, बस हम आ रहे हैं।" चिल्लाते हुए गुफा में भागे।

उनका साहस देखकर मन्त्री गंगाधर को अचरज हुआ। राजा उग्रसेन ने हाथ उठाकर कहा—"यदि तुम मेरी लड़की को सही सलामत ले आये, तो मैं तुम्हारे राजद्रोह को माफ कर दूँगा।"

मन्त्री गंगाधर गुफा में गया और कुछ सैनिक भी मशालें लेकर अन्दर गये। धूमक और सोमक के कुछ दूर जाने के बाद "अरे बचाओ....बचाओ" सैनिकों का चिल्लाना सुनाई पड़ा। धूमक और सोमक कुछ घबराये और वे एक दूसरे का मुँह ताकने लगे।

उन्हें डर लगा कि राक्षस दोनों सैनिकों को चीर फाड़कर खा रहा था। इतने में सोमक ज़ोर से चिल्लाया—"धूम्....हमें क्या डर है? अपनी ग्रामदेवी कालेरम्भा को याद करो।" "जय कालेरम्भा" धूमक ने भी उसके साथ जय जयकार किया।

वे आगे बढ़े, तो उन्होंने जो दृश्य देखा उससे उनके आश्चर्य की सीमा न रही।

एक बड़ा अजगर एक सैनिक का सिर निगल रहा था और दूसरे को अपनी पूँछ से गुफा की दीवार पर पटक पटककर मार रहा था। दोनों सैनिक हाय हाय कर रहे थे।

सोमक ने जब अजगर के सिर पर दो तीन बार तलवार मारी, तो वह आधा कट गया और उसके मुख का सैनिक नीचे गिर गया। इस बीच धूमक ने अजगर के पेट पर तलवार मारी और उसके दो टुकड़े कर दिये और दूसरा सैनिक उसकी पकड़ से छूटकर पागल की तरह चिल्लाता गुफा में कूदने फाँदने लगा।

मन्त्री गंगाधर कुछ सैनिकों के साथ जब वहाँ पहुँचा, तो खून के तालाब में अजगर छटपटा रहा था और धूमक और सोमक की तलवारों से खून टपक रहा था। उसने पूछा—"राक्षस कहाँ है?"

"यहाँ कोई राक्षस नहीं है, हुजूर! अन्धेरे में यह अजगर ही सैनिकों पर कूदा था और औरों ने उसे राक्षस समझ लिया।" धूमक ने कहा।

"राक्षस मायावी हैं। वे जो रूप चाहते हैं, क्षण में धारण कर लेते हैं।

वह कुम्भीर ही शायद इस अजगर के रूप में होगा। मेरी लड़की कहाँ है?" राजा उग्रसेन चिल्लाया।

मन्त्री गंगाधर ने उग्रसेन का कन्धा सहलाते हुए कहा—"महाराज, आप इस अन्धेरी गुफा में क्यों आये? बाहर ठंडी हवा में आराम कीजिये। आपकी लड़की उठा ले जानेवाला राक्षस इस गुफा में कहीं हुआ, तो उसको पकड़कर लाने की जिम्मेवारी मुझ पर है।"

धूमक और सोमक मशालें लेकर गुफा में कुछ दूर गये। उन्होंने देखा कि आगे जाकर गुफा दो तीन सुरन्गों में फट गई थी। उन सुरन्गों से जंगल में जिधर चाहो, उधर जाया जा सकता था। उन्होंने अनुमान किया, इन सुरन्गों में किसी एक से वह भाग गया था। यह बात उन्होंने गंगाधर के पास आकर बताई।

गंगाधर ने हताश होकर कहा—"अच्छा, अब कुछ भी नहीं किया जा सकता। देखें वह गुफा कैसी है, जिसमें मान्त्रिक दिखाई दिया था।" सब गुफा से बाहर आये। उस सैनिक को जिसे अजगर ने आधा निगल लिया था कई ने कन्धों पर उठा लिया और जो सैनिक पगला गया था उसकी कमर में रस्सी बाँधकर, उसे वे बाहर ले आये।

जिस गुफा में मान्त्रिक कालशम्बर दिखाई दिया था वहाँ उतना अन्धेरा न था। न मालूम कहाँ से गुफा में रोशनी आ रही थी। धूमक और सोमक गुफा में गये। उनके पीछे पीछे मन्त्री गंगाधर गया। उनको अन्दर हल्की हल्की रोशनी में मनुष्य का शव दिखाई दिया जिसे क्रूर पशुओं ने कहीं कहीं खाकर छोड़ दिया था।

उसे देखते ही गंगाधर आगे बढ़ा और ध्यान से शव को देखा—"यह जयन्त का शव है आसपास कहीं एक और...." वह चारों ओर देखने लगा। धूमक और सोमक ने देखा कि उसकी आँखों में तब तरी आ गई थी। जब वे दोनों और आगे बढ़े, तो धूमक को कोई चीज़ चमकती हुई दिखाई दी। उन्होंने उसे उठाकर देखा, वह कालशम्बर का मन्त्रदण्ड था। उस समय धूमक के आनन्द की सीमा न रही। मन्त्रदण्ड को हिलाते हिलाते वह मन्त्री गंगाधर के पास आया। उसे मन्त्रदण्ड दिखाते हुए उसने कहा—"प्रभू! मान्त्रिक भी गुफा से भाग गया है। यह कालशम्बर का मन्त्रदण्ड है। यह मुझे मिला है।"

"तुम्हें यह मिला है, हो सकता है कि इसमें अद्भुतशक्ति हो।" कहता मन्त्री गंगाधर गुफा से बाहर आया। दुखी हो, एक पत्थर पर बैठे राजा उग्रसेन के पास आकर कहा—"महाराज! दुखी मत होइये। हम दोनों ही अभागे हैं। आपकी इकलौती लड़की चली गई है और मेरा इकलौता लड़का। जब तक यह नहीं मालूम हो जाता कि वह राक्षस और मान्त्रिक कहाँ हैं!—वह अभी कह ही रहा था कि कदम्ब देश का मन्त्री खून से लथपथ हो, चीथड़े पहिन, घोड़े पर सवार हो, वहाँ आया। "महाराज! नाश, सर्व नाश" उसने घोड़े पर से झट उतरने की कोशिश की, पर उसका पैर ज़ीन में फँस गया और वह औंधे मुँह नीचे गिर पड़ा।

शाप के समान वर

विक्रमार्क ने हठ न छोड़ा। वह पेड़ के पास गया। पेड़ पर से शव उतारकर हमेशा की तरह चुपचाप श्मशान की ओर चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजा, तुम किसी बड़ी शक्ति के लिए आधी रात के समय इतने कष्ट उठा रहे हो, पर यह समझ लो कि उन शक्तियों के कारण कभी कभी क्लिष्ट परिस्थितियाँ भी पैदा हो जाती हैं। इसके दृष्टान्त के रूप में जयचन्द्र नाम के युवराज की कहानी सुनाता हूँ। सुनो, तांकि तुम्हें थकान न मालूम हो!"

श्रीवत्स देश के राजा के बहुत दिनों बाद एक लड़का हुआ। उस लड़के के नामकरणोत्सव के समय न मालूम कहाँ से

वेताल कथाएँ

पर जैसा कि उसने सोचा था, वैसा न हुआ। जयचन्द्र छुटपन से ही बड़ा धूर्त और गुसैल हो गया। पर जब वह थोड़ा बड़ा हुआ, तो जो कुछ वह कहता, वह हो जाता। चाहे उसके मुँह से कैसी भी दारुण बात निकले, वैसी ही घटती। यही नहीं, जो कुछ यूँ होता, वह बदला भी नहीं जा सकता था। बड़े उससे यदि यह कहलाते भी कि वह फल बदल जाये, तो भी कुछ न होता।

जयचन्द्र जब बड़ा हुआ, तो उसका गुस्सा भी उसके साथ बढ़ा। उसके माँ-बाप के साथ देशवासी भी सोचने लगे, क्या अच्छा होता यदि उसको वह वर न मिला होता।

कुछ दिन बाद जयचन्द्र स्वयं अपने वर को शाप समझने लगा। चूँकि वह हर तरह से अच्छा आदमी था, एक गुस्सा ही उसकी कमजोरी थी। गुस्से में वह कुछ का कुछ बक उठता और जो कुछ वह कहता, वह तुरत हो भी जाता। बाद में वह पछताता भी, पर कुछ कर न पाता।

अपने गुस्से को काबू में करने के लिए जयचन्द्र ने बड़ी कोशिश की, पर वह कामयाब न हुआ।

योगीश्वर नाम का कोई सिद्ध पुरुष आया। राजा ने उस योगी का बहुत अच्छी तरह आतिथ्य किया। उसने उसका जयचन्द्र नाम रखते हुए उसको कोई बड़ा वर भी देने के लिए कहा।

योगीश्वर कोई छोटी मोटी शक्ति देने के लिए मान गया, पर राजा उससे सन्तुष्ट न हुआ। इसलिए योगीश्वर ने वर दिया कि जो कुछ वह कहेगा वह अवश्य होगा।

इस वर के कारण, राजा ने सोचा कि तीनों लोकों में उसके लड़के के समान कोई न होगा।

उसकी सेवा करने, या उसके सामने जाने के लिए नौकर चाकर डरते। न मालूम उसे कब गुस्सा आये और न मालूम वह कब कहे—"जा मर....गंगा में डूब मर...." उसके यह कहते ही नौकर का काम तमाम हो जाता। इसलिए नौकर राजमहल छोड़कर जाने लगे। कुछ दिनों बाद राजा के नौकर भी जाने लगे। राजमहल सूना-सा लगने लगा। इसके लिए किसी को दोष देने की ज़रूरत न थी।

जयचन्द्र की बात पर उसके माँ-बाप ही डरा करते। औरों का तो कहना ही क्या! इस दुरवस्था में यदि कोई शत्रु राजा उन पर आक्रमण करता तो उसे अवश्य विजय मिलती। परन्तु अड़ोस पड़ोस क राजाओं ने श्रीवत्स देश पर हमला न किया। जयचन्द्र की वाक्शक्ति के बारे में वे भलीभाँति जानते थे।

जयचन्द्र को यद्यपि हर किसी ने छोड़ दिया था, परन्तु उसका बाल मित्र, सेनापति का लड़का, गुणमित्र उसके साथ ही था। उन दोनो में इतना घनिष्ट सम्बन्ध था कि जयचन्द्र ने गुसैल होते हुए भी कभी उस पर गुस्सा न किया। जयचन्द्र के

लिए अलग बनाये गये महल में गुणमित्र भी रहा करता और उसके सब काम काज बड़े सब्र से किया करता।

जयचन्द्र सयाना हुआ। एक दिन शाम को वह बड़ी गम्भीरता से अपने जीवन के बारे में सोचने लगा। उसकी वाक्शक्ति, उसके लिए भयंकर शाप थी। उसके कारण मानों, उसका जीवन ही नष्ट हो गया था। कोई उसके पास न आता। माँ-बाप ही उसको भूत-सा समझते। इसमें कोई अधर्म की बात न थी। उनको दोष देने से भी कोई फायदा न था। जब तक

वह अपने गुस्से को काबू में नहीं कर लेगा, तब तक उसकी स्थिति नहीं बदलेगी।

जयचन्द्र यूँ सोच रहा था कि गुणमित्र उसके पास आया। उसे दुखी पा, उसको मनाने के लिए उसने इधर उधर की गप्प लगाने की कोशिश की।

जयचन्द्र कुछ देर तक तो उसकी बातें सुनता रहा फिर खिझकर उसने कहा—"जा तेरा मुख गिरे....क्या बकवास कर रहे हो?" उसका यह कहना था कि गुणमित्र के मुख से बात तक न निकली। वह गूँगा हो गया।

जब उसको अपनी गलती मालूम हुई, तो जयचन्द्र को बड़ा दुख और ग्लानि हुई। उसका एक ही मित्र रह गया था और उस मित्र का ही उसने इस प्रकार अपकार कर दिया था। जिस सिद्ध पुरुष ने शाप-सा वर दिया था, अगर उससे न मिला गया और उससे इस वर का उपसंहार न करवाया गया तो जीवन ही व्यर्थ था....उसने सोचा।

जयचन्द्र उसी रोज़ घोड़े पर सवार होकर योगीश्वर को खोजता घर से निकल पड़ा। उसका पालतू कुत्ता भी उसके साथ निकला। जाते जाते वह अपने राज्य की सीमा पर स्थित एक मुनि के आश्रम में पहुँचा। उससे पहिले ही कुत्ता आश्रम में गया। वह तपस्या करते मुनि के पास इस तरह बैठ गया, जैसे उसका गम्यस्थान ही वही हो।

जयचन्द्र घोड़े पर से उतरा। उसे पेड़ से बाँधा। मुनि के पास आकर उसने प्रणाम किया। "स्वामी, क्या यहाँ सिद्ध योगीन्द्र रहते हैं?"

"इस आश्रम में सिवाय मेरे और कोई नहीं है? परन्तु अगर तुम कुछ

जानना चाहो, तो मुझ से पूछ सकते हो।" मुनि ने कहा।

जयचन्द्र ने अपनी कहानी सुनाई। उसने कहा कि सिद्ध की सहायता से वह उस वर से मुक्त होना चाहता था, जो कभी वे उसे दे गये थे।

"इतने अच्छे वर को खो देने से तो यही अच्छा है कि तुम अपने निरुपयोगी क्रोध को जो खो बैठो और वर के प्रभाव से लाभ जो उठाओ।" मुनि ने कहा।

"नहीं....यह नहीं। कुछ भी हो मैं उस सिद्ध से मिलना चाहता हूँ।" कहकर जयचन्द्र निकल पड़ा। उसने थोड़ी दूर जाने के बाद पीछे मुड़कर जो देखा, तो कुत्ता नहीं आ रहा था। वह अभी मुनि के पास ही बैठा था। जयचन्द्र ने उसे बुलाया। वह इधर उधर मुड़ा, पर वहाँ से हिला नहीं। जयचन्द्र को गुस्सा आ गया। उसने कहा—"जा, यहीं मर...." तुरत कुत्ता, जहाँ बैठा था, वहीं मर गया।

यह देख जयचन्द्र की आँखों से आसुओं की झड़ी लग गई। उसे बड़ी आत्म ग्लानि हुई। वह फिर कुत्ते के पास गया। कुत्ते को प्रेम से सहलाया। "मुझे इस तरह शाप से मारनेवाला कोई नहीं है, अगर हो, तो यह संसार, मेरे बगैर बड़ा खुश रह सकेगा।"
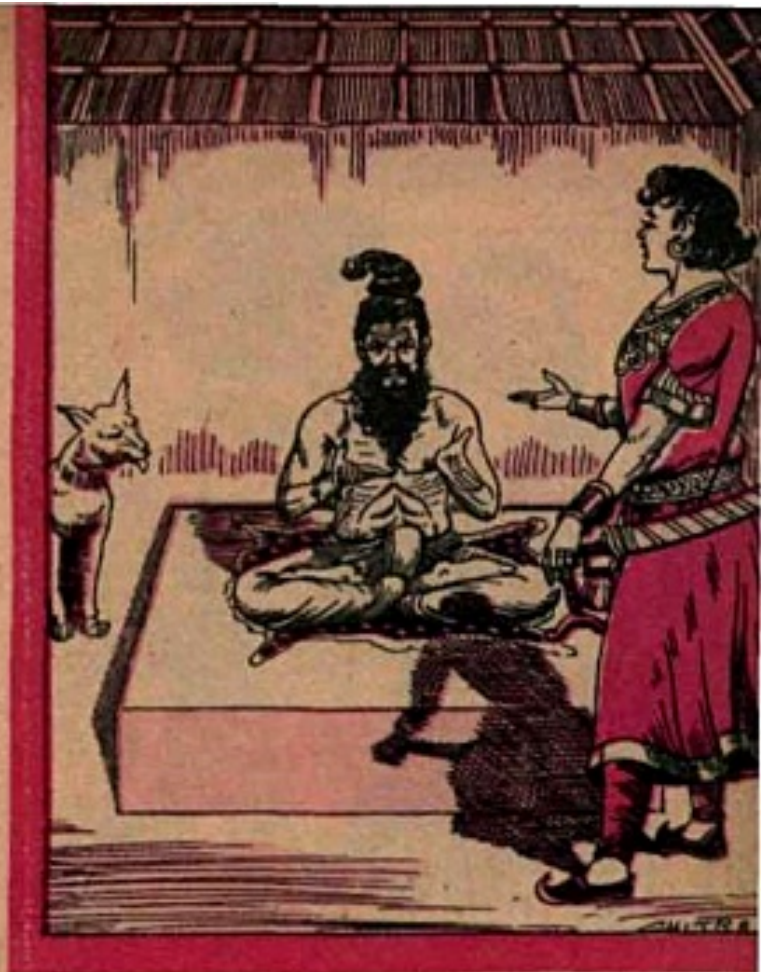
"पश्चात्ताप में मर जाना आसान है। संयम से अपना व्यवहार बदलकर जीना बड़ा कठिन है। धीर व्यक्ति दूसरा मार्ग अपनाता है। इसलिए मेरे पास रहकर आत्म संयम सीखो।" मुनि ने कहा।

"नहीं, मैं शापग्रस्त हूँ। मुझे उस सिद्ध मुनि को देखना होगा और उनसे यह शाप वापिस करवाना होगा। मेरे लिए

आत्म संयम सम्भव नहीं है।" जयचन्द्र ने कहा।

"उससे तुम्हारी शक्ति तो चली जायेगी, पर तुम्हारा गुस्सा न जायेगा। तुम संसार के लिए काँटे से ही रहोगे!" मुनि ने कहा। उसके परामर्श की जयचन्द्र ने परवाह न की। उसने अपने कुत्ते को उठाकर घोड़े पर बिठाया। स्वयं भी घोड़े पर सवार होकर आश्रम छोड़कर चला गया।

जाते जाते एक राज्य आया। जयचन्द्र उस राजा को देखने गया। उसने उसे बताया कि वह श्रीवत्स देश का युवराज था। उसने उससे पूछा—"क्या तुम्हारे राज्य में कोई प्रसिद्ध सिद्ध योगी है।"

"मुझे नहीं मालूम कि मेरे राज्य में कोई सिद्ध है कि नहीं। पर मेरी लड़की अरुन्धती बड़ी अक़्लमन्द है। अगर कुछ जानना चाहो, तो उससे पूछ देखो।" राजा ने कहा।

उसने अपनी लड़की को बुलवाया। अरुन्धती अक़्लमन्द ही नहीं, बड़ी सुन्दर भी थी। उसे देखते ही, जयचन्द्र ने उसके साथ विवाह करना चाहा। राजा ने कोई आपत्ति न की और उन दोनों का उसने विवाह कर दिया।

अरुन्धती जान गई क्यों उसका पति इतना चिन्तित था। वह यह भी जान गई कि सिवाय प्रायश्चित्त के, उसको ठीक करने का और कोई उपाय न था। उसने कुत्ते के शव को कांच की एक अलमारी में रखवाया और उस अलमारी को उस कमरे के अन्दर रखवा दिया।

कुछ दिन जयचन्द्र को अपना जीवन स्वर्ग के समान लगा। उसे अपनी पत्नी

से बड़ा प्रेम था। उसे अपनी पत्नी पर कभी गुस्सा न आया। वह भी बड़ी अक्लमन्द थी, इसलिए कभी वह उसे गुस्सा न करने देती।

कुछ समय बाद अरुन्धती ने कुछ कहा और उसे झट गुस्सा आ गया। गुस्से में वह उछलता उछलता-सा इधर उधर चलने लगा। अरुन्धती ने डरकर कहा—"गुस्से में मुझे कुछ न कहिये। आपने कहा था न कि आपको कुत्ते से बहुत लगाव था, देख लीजिये उसकी क्या हालत हुई है।"

यह सुन जयचन्द्र पिघला नहीं बल्कि उसने कहा—"तुम क्या बक रही हो, अगर तुम्हारी हालत कुत्ते की-सी हो जाये, तो मुझे कितना सन्तोष हो।"

यह कहना था कि कुत्ते के शव के साथ अरुन्धती का शव भी उसको दिखाई दिया। तुरत उसका गुस्सा ठंडा हो गया। उसने अपना सिर पीटा, रोया धोया। उसने सोचा कि यह ही उसको सबसे बड़ी सज़ा थी।

वह उस काँच की अलमारी के साथ अपने देश चला गया। रोज अपनी पत्नी के शव और कुत्ते के शव को देखकर

रोता—"इससे बड़ी सज़ा और कौन-सी मिल सकती है !"

ज्यों ज्यों दिन बीतते गये, त्यों त्यों उसका अहंकार और धूर्तता भी कम होती गई। कुछ दिनों में वह परम साधु बन गया।

यह परिवर्तन देख उसका पिता और उसके कर्मचारी बड़े प्रसन्न हुए। जो तब तक उससे दूर रहते थे, अब उसके पास आने जाने लगे।

एक बार जयचन्द्र अकेला बैठा हुआ था कि एक व्यक्ति जो साधु-सा जान पड़ता था, उसके पास आया—"मैं वही सिद्ध हूँ, जिसने तुमको वर दिया था, मेरा नाम योगीश्वर है।"

जयचन्द्र ने उठकर उसको प्रणाम किया—"आपके लिए मैं बहुत घूमा फिरा। देखिये आपने कैसा वर दिया है। मेरा सबसे अच्छा मित्र गूँगा हो गया। मेरा विश्वासपात्र पालतू कुत्ता और मेरे प्राणों के समान पत्नी दोनों ही शव हो गये। वह वर भी किस काम का, जिससे मैं उनको जिला न सकूँ। उसे आप ही ले लीजिये।"

"मैं जानता था कि तुम मेरे लिए खोज रहे हो। मैं उस आश्रम में तुम्हें मुनि के रुप में दिखाई दिया था। परन्तु तुम मुझे पहिचान न सके। तुम्हारे कुत्ते ने मुझे पहिचान लिया था। अब भी कोई खास बिगड़ा नहीं है। मैं अपना वर वापिस ले लेता हूँ और उस वर से जो जो नष्ट हुए हैं, वे सब ठीक हो जायेंगे।" सिद्ध ने कहा।

उसके यह कहते ही, कांच की अलमारी खोलकर अरुन्धती और कुत्ता सजीव हो बाहर निकले। उसी समय गुणमित्र वहाँ

आया—"भाई, क्या सौभाग्य है!" उसने कहा।

जयचन्द्र का स्वभाव तब से बड़ा अच्छा हो गया। सब उसको अच्छा मानने लगे। अपने पिता के बाद उसने कई दिनों तक सुख से राज्य किया।

बेताल ने यह कहानी सुनकर कहा—"राजा, जब योगीश्वर जानता था कि वह उसको खोज रहा था, तो उसने क्यों उसकी उपेक्षा की? क्यों उसने अपना दिया हुआ वर वापिस लिया, जब कि उससे जयचन्द्र को लाभ होनेवाला था। यदि तुमने जान बूझकर इन प्रश्नों का उत्तर न दिया, तो तुम्हारे सिर के टुकड़े टुकड़े हो जायेंगे।

तब विक्रमार्क ने इस प्रकार कहा जयचन्द्र को दिये हुए वर का इस प्रकार नाशक हो जाना, उसका जन्मजात स्वाभाविक क्रोध था। इसीलिए योगीश्वर ने जब वह मुनि रूप में था, उसको क्रोध का निग्रह करने की सलाह दी। बिना कड़े दण्ड के, जयचन्द्र अपने क्रोध को काबू में न रख सका। जयचन्द्र के साधु स्वभाव हो जाने के बाद, उस वर से लाभ हो सकता था। पर उसमें वह इच्छा पूर्णतः नष्ट हो चुकी थी। सिवाय मित्र को फिर वाक्शक्ति देने के पत्नी और कुत्ते को जीवित करने के उसमें और कोई इच्छा न रह गई थी। बिना वर के उपसंहरण के यह सम्भव न था। इसलिए ही सिद्ध ने अपना वर वापिस ले लिया था।

राजा का इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य हो गया और पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

खोई हुई अंगूठी

एक गाँव में एक आदमी की पहिली पत्नी गुजर गई थी। उसके एक लड़का था, जिसका नाम देवी प्रसन्न था। पहिली पत्नी के गुजर जाने के बाद प्रसन्न के पिता ने दूसरी शादी कर ली। उसके भी एक लड़का हुआ।

प्रसन्न अभी सयाना न हुआ था कि उसने घूम फिरकर देश देखना चाहा—पिताजी! मैं कुछ दिन तक देश में घूमूँगा। मुझे नहीं मालूम, मैं कब वापिस आऊँगा। पर यदि जिन्दा रहा, तो अवश्य वापिस आऊँगा।

लड़का बढ़ रहा था। कुछ सालों बाद उसको पहिचानना मुश्किल हो जायेगा। इसलिए प्रसन्न के पिता ने निशान के लिए उसकी माता की अंगूठी उसे दी।

बहुत साल बीत गये। प्रसन्न कहाँ था? उसका क्या हो गया था? जिन्दा था, या मृत यह भी कोई न जानता था। परन्तु अन्त में वह वापिस चला आया। किन्तु घर आने से पहिले, रास्ते में वह अपनी माँ की अंगूठी खो बैठा।

यद्यपि लड़का इतना बदल गया था कि वह उसे पहिचान भी न पाया था, तो भी पिता उसको देखकर बड़ा खुश हुआ और उसने जो कुछ कहा, उसका विश्वास भी कर लिया। परन्तु प्रसन्न की सौतेली माँ बड़ी झुंझलाई। चूँकि सम्पत्ति में उसके लड़के के साथ हिस्सा बँटाने के लिए यह चला आया था। उसने अपने पति से कहा—"मैं इतने दिनों से यह गृहस्थी चलाती आई हूँ और इतने में कोई ऐरा

रामस्वरूप

गैरा अपने को तुम्हारा लड़का बताता सम्पत्ति में भाग लेने आ धमका।"

लड़के को, जो बिना अंगूठी लेकर आया था, पिता को भेजना पड़ा। उसने छुपकर उसके हाथ में चार रुपये रखते हुए कहा—"जैसे भी हो अंगूठी खोजकर इस बार आओ।"

प्रसन्न चार दिन चलने के बाद एक घने जंगल में पहुँचा। वहाँ उसे एक बुढ़िया दिखाई दी। वह एक बड़ा-सा गठ्ठर सिर पर रखने की कोशिश कर रही थी और उसे उठा नहीं पा रही थी। प्रसन्न ने उसकी मदद की।

बुढ़िया ने पूछा—"भाई, क्यों ऐसी मनहूस जगह आ पहुँचे। तुरत वापिस चले जाओ।" मैं इससे अच्छा प्रत्युपकार नहीं कर सकती।

"दादी, मैंने बहुत कष्ट झेले हैं। पर कभी मैंने उनको पीठ नहीं दिखाई है।" प्रसन्न ने कहा। वह उस बुढ़िया को छोड़कर कुछ दूर आगे गया था कि उसने एक राक्षस को देखा। वह अपने नाखूनों से पेड़ की छाल उखाड़ रहा था। वह देखने में तो बहुत भयंकर था, पर जब प्रसन्न ने उससे बात की, तो उसने बड़ी शिष्टता से बातचीत की।

"लगता है तुम काम की खोज में फिर रहे हो। क्या मेरे पास काम करोगे?" राक्षस ने प्रसन्न से पूछा।

"क्या काम है और क्या वेतन है?" प्रसन्न ने पूछा।

"तुम्हारा काम इस जंगल के बीच में रास्ता बनाना होगा। यदि एक साल में तुमने जंगल के बीच में से रास्ता बना दिया, तो जंगल की परली तरफ तुम्हें एक पेड़ दिखाई देगा और उस पर

घुघु का एक घोंसला दिखाई देगा। उस घोंसले में तुम्हें राजा के रत्न, मोतियाँ दिखाई देंगी। वह ही तुम्हारा वेतन है। यदि एक साल में तुमने यह काम न किया, तो तुम जितने साल जीओगे, उतने साल मेरे यहाँ बिना वेतन लिए काम करोगे। क्या इसके लिए राजी हो?" राक्षस ने पूछा।

"लाचार को हर किसी काम के लिए तैयार रहना पड़ता है!" कहते हुए प्रसन्न ने राक्षस की शर्त मान ली। जब उसने राक्षस के घर पैर रखा, तो उसे बुढ़िया दिखाई दी। पर उसने ऐसा दिखाया, जैसे प्रसन्न को पहिचाना ही न हो। यह सोच कि वह राक्षस की पत्नी थी और राक्षस से डर रही थी, उसने भी यह दिखावा किया, जैसे उसे कभी देखा ही न हो।

अगले दिन राक्षस ने प्रसन्न के हाथ में एक कुल्हाड़ी देकर, जंगल में एक जगह ले जाकर कहा—"जितनी जल्दी काम शुरु कर सको, उतना अच्छा है। कोई कठिन काम नहीं है।" कहकर उसने एक पेड़ को यूँ उखाड़कर दिखाया, जैसे वह कोई छोटी मोटी सूखी टहनी हो और वह अपने काम पर चला गया।

पर जब प्रसन्न ने कुल्हाड़ी एक और पेड़ पर मारनी शुरु की, तो वह कटता-सा न लगा। वह बड़ा सख्त था। उस पेड़ का नाम ही पत्थर का पेड़ था।

अन्धेरा होने के बाद जब प्रसन्न घर वापिस चला आया, तो राक्षस ने पूछा—काम ठीक तरह जल्दी जल्दी चल रहा है न!"

"अरे बाप रे बाप वे पेड़ तो बड़े सख्त हैं।" प्रसन्न ने कहा।

"मेरे काम करनेवाले सब बड़े आलसी हैं। हर किसी ने वही बात कही, जो तुम कह रहे हो।" राक्षस ने कहा।

प्रसन्न को आलसी कहलाया जाना बिल्कुल अच्छा न लगा। उसने अगले दिन और अच्छी तरह कोशिश की। पर फल ज्यादा न हुआ। जब राक्षस ने देखा कि वह रोज दो चार पेड़ों से अधिक न काट पा रहा था, तो वह बड़ा खुश हुआ।

कुछ दिनों बाद एक दिन सवेरे प्रसन्न कुल्हाड़ी लेकर जा रहा था, तो बुढ़िया पहिले की तरह दिखाई दी। "देख बेटा....जैसे इसने औरों के साथ अन्याय किया है, वैसे तुमसे भी अन्याय करने जा रहा है। तुम जिस पेड़ को काट रहे हो, वहाँ से सत्तरवें पेड़ों की पंक्ति को काटो। यह बात राक्षस को न पता लगे। वहाँ भी कुछ न कुछ काम करते रहो जहाँ राक्षस ने काम करने के लिए कहा है।" यह कहकर बुढ़िया जल्दी जल्दी चली गई।

प्रसन्न तुरत उसके कहे अनुसार गिनता, सत्तरहवें पेड़ के पास पहुँचा और जब उसने उस पर चोट की तो वह सरकँड़े की तरह नीचे टूटकर गिर गया। उसी पंक्ति

प्रसन्न ने एक और पेड़ भी काट डाला, उसमें बड़ा जोश आ गया। अन्धेरा होने से पहिले उसने सौ पेड़ गिरा दिये और जंगल में लम्बा-सा रास्ता बन गया।

तब से हर रोज जंगल में ज्यादह समय छुपा छुपा रास्ता बनाता और कम समय पुरानी जगह काम करता और घर चला जाता। जब राक्षस पूछता कि काम कैसे चल रहा है तो वह कहता—"क्या चल रहा है। वे पेड़ भी क्या हैं! पत्थर के पेड़ हैं!" राक्षस मन ही मन बड़ा सन्तुष्ट होता।

राक्षस की दी हुई अवधि समाप्त होने को थी कि प्रसन्न ने जंगल में से रास्ता बना दिया और मैदान में जा पहुँचा। वह एक पेड़ के पास पहुँचा, तो उस पर से घुग्घू उड़कर चला गया। प्रसन्न ने उस पेड़ पर चढ़कर उस पर लगे घोंसले को देखा। उसमें बहुत-से रत्न थे उसकी अंगूठी भी थी।

प्रसन्न बड़ा खुश हुआ। वह वे गहने और अंगूठी लेकर, पेड़ पर से उतर आया। राक्षस से विदा लेने का भी समय उसके पास न था। वह सीधे राजा से मिलने गया।

राजा निराश हो चुका था कि उसके रत्न उसे फिर न मिलेंगे। प्रसन्न ने जब उनको लाकर दिया, तो वह बड़ा खुश हुआ। उसने अपनी सब से छोटी लड़की का प्रसन्न के साथ विवाह करने का निश्चय किया।

प्रसन्न के पिता के पास निमन्त्रण पत्र आया। पिता यह सोचकर बड़ा खुश हुआ कि भले ही उसकी सम्पति में हिस्सा बँटाने के लिए उसके लड़के का भाग्य न हो। परन्तु राजकुमारी से विवाह करने का अवश्य भाग्य था। वह विवाह में सम्मिलित होने के लिए निकल पड़ा। उसकी दूसरी पत्नी ने भी जाने की ज़िद पकड़ी।

"न मालूम कितने दिनों से घर बार देखती घर में रही हो, अब भी घर में रहो। मैं जाकर विवाह करवा आऊँगा।" पति ने कहा।

प्रसन्न का राजकुमारी के साथ वैभवपूर्वक विवाह हो गया। वे राजधानी में कई दिनों तक सुख मे रहे।

खुदा से भी बड़ा

एक बार बादशाह ने यूँ पूछा—"कौन बड़ा है ! मैं या खुदा !"

"ज़रूर, आप ही।" बीरबल ने कहा।

"किसलिए !" बादशाह ने बीरबल से पूछा।

"चूँकि एक काम आप ऐसा कर सकते हैं, जो खुदा भी नहीं कर सकता।" बीरबल ने कहा।

"क्या तुम सचमुच जानते हो कि जो काम खुदा नहीं कर सकता है मैं कर सकता हूँ !" बादशाह ने बीरबल से पूछा।

"हाँ....बादशाह...." बीरबल ने कहा।

"ऐसा कोई काम नहीं है जो खुदा न कर सके !" दरबारी ने कहा। उसे बीरबल से ईर्ष्या थी।

"हाँ, है...." बीरबल ने कहा।

"तो वह बहुत गन्दा काम होगा।" दरबारी ने कहा।

"तो तुम्हारा मतलब है कि हमारे बादशाह गन्दे काम करते हैं !" बीरबल ने उस दरबारी से साफ़ साफ़ पूछा।

"छी....छी....मैं तो उन कामों के बारे में ही कह रहा हूँ, जो खुदा करते हैं।" दरबारी ने कहा।

"मैंने यह कहा है कि एक काम खुदा नहीं कर सकते हैं और बादशाह कर सकते हैं ! उस सम्बन्ध में तुमने कहा कि खुदा गन्दे काम ही नहीं कर सकते हैं। तो इसका मतलब यही तो हुआ कि हमारे बादशाह वह काम कर सकते हैं।" बीरबल ने कहा। दरबारी हक्का बक्का रह गया। उसने घबराते हुए कहा—"मैंने कभी न सोचा था कि

मेरे कहे का इतना बुरा मतलब निकाला जायेगा। मेरी मूर्खता माफ़ कीजिये।"

बादशाह ने खिझकर कहा—"बीरबल तुम इधर उधर की बात बनाये बगैर जल्दी यह बताओ कि कौन-सा ऐसा काम है, जो खुदा नहीं कर सकता है और मैं कर सकता हूँ।"

"ज़रूरत पड़ने पर आप किसी को भी आजीवन देश निकाला दे सकते हैं न!" बीरबल ने पूछा।

"हाँ, ज़रूर, यदि कोई बड़ा अपराध करे, तो उसको आजीवन देश निकाला देने के लिए मैं बिल्कुल नहीं झिझकूँगा।" बादशाह ने कहा।

"और क्या चहिए? अगर खुदा चाहें तो भी किसी को यह दण्ड नहीं दे सकते।" बीरबल ने कहा।

"क्यों नहीं दे सकते?" बादशाह ने पूछा।

"चूँकि....सारा विश्व ही खुदा का देश है....राज्य है। कोई ऐसी जगह नहीं है....जहाँ उसका अधिकार नहीं हो। चाहे कोई कितना बड़ा ही अपराध क्यों न करे, खुदा अपने राज्य से उसे नहीं निकाल सकते। अगर निकाल भी दे तो भी वह निश्चय नहीं कर सकते कि उसे कहाँ भेजा जाये, परन्तु वह काम आप आसानी से कर सकते हैं। इसीलिए मैंने कहा है कि आप कुछ काम कर सकते हैं, जो खुदा भी नहीं कर सकते।" बीरबल ने कहा। अकबर उसकी युक्ति पर बड़ा खुश हुआ। जिन्होंने सोचा था कि वह हार जायेगा, उनका अपमान हुआ।

शार्दूल कर्ण

गौतम बुद्ध श्रावस्ती नगर के समीप अनाथ पिंडक के जेतवन में जब थे तो एक दिन प्रातःकाल आनन्द भिक्षा पात्र लेकर भिक्षा के लिए श्रावस्ती नगर में गया। भिक्षा खाने के बाद आनन्द पानी पीने के लिए एक कुँए के पास गया।

तभी प्रकृति नाम की चाण्डाल कन्या उस कुँए में से पानी लेकर जा रही थी। उसे देखकर आनन्द ने कहा—"बहिन, मुझे थोड़ा पानी दो।"

"भाई, मैं चाण्डाल कन्या हूँ।" प्रकृति ने कहा।

"बहिन, मैंने तो तुम्हारे कुल और जाति के बारे में नहीं पूछा है। मैंने तो सिर्फ थोड़ा-सा पानी माँगा था।" आनन्द ने कहा। प्रकृति ने उसको थोड़ा पानी दिया। पानी पीकर आनन्द फिर चल पड़ा। आनन्द के यौवन, स्वर, हाव भाव देखकर प्रकृति में उसके प्रति प्रेम पैदा हो गया। उसने उसको अपना पति बनाने का निश्चय किया।

वह घर गई। उसने अपनी माता से, जो कुछ मन्त्र तन्त्र जानती थी, अपने प्रेम के बारे में कहा और आनन्द को अपने घर बुलवाने के लिए कहा और यह भी कहा कि अगर वह न आया, तो वह अपने प्राण छोड़ देगी।

माँ अपनी लड़की की बात न ठुकरा सकी। घर को लीपा पोता। अग्नि जलाकर, मन्त्र जप जप कर वह होम करने लगी। वह यूँ कर रही थी और उधर आनन्द पगला-सा रहा था। वह वहाँ से,

गुणशेखर

"बेटी, मेरे मन्त्रों से शाक्य मुनि की शक्ति बड़ी है। उनकी शक्ति के समान शक्ति किसी में नहीं है!" प्रकृति से उसने कहा।

प्रकृति ने उस दिन रात को स्नान किया। अपने आभूषण निकाल दिये। पुराना कपड़ा पहिन लिया और नगर के पास जा खड़ी हुई। प्रातःकाल होते ही, आनन्द भिक्षा के लिए नगर में आया। प्रकृति उसके पीछे चलती गई। जहाँ वह रुकता, वह भी रुकती। उसके पीछे पीछे वह विहार गई।

बुद्ध ने उसे देखकर कहा—"प्रकृति तुम आनन्द के पीछे पीछे क्यों जा रही हो?"

"स्वामी! मैं उसको अपना पति बनाना चाहती हूँ।" प्रकृति ने कहा।

"यही बात है, तो तुम अपने माँ बाप की अनुमति लेकर यहीं रह जाओ।" बुद्ध ने कहा।

प्रकृति अपने माँ बाप को बुला लाई और उनसे उसने अनुमति भी ले ली। बुद्ध ने उससे भिक्खुनी का वेष धारण करवाया। उसे उपदेश दिया और उसे आनन्द की सेविका नियुक्त किया।

चाण्डाल के उद्यान में आया। प्रकृति के घर में घुसा। वह अग्निकुण्ड के पास गया। वह अपने दुःख को न रोक सका। उसने मन ही मन सोचा—"यह आपत्ति कैसे टल सकती है! बुद्ध भगवान तुम ही मेरे रक्षक हो।"

बुद्ध आनन्द की स्थिति जान गये। उन्होंने चाण्डालिनी के मन्त्रों को काट दिया। आनन्द फिर विहार की ओर निकल पड़ा। माँ की मन्त्र शक्ति के कारण घर आया हुआ आनन्द को वापिस जाता देखा, प्रकृति ने अपनी माँ से पूछा कि वह क्यों जा रहा था।

यह सुनते ही कि बुद्ध ने एक चाण्डाल कन्या को सन्यास दिया है, श्रावस्ती नगर के ब्राह्मण बड़े क्रुद्ध हुए। राजा प्रसेनजित को साथ लेकर वे जेतवन के विहार में आये, बुद्ध ने उनके आक्षेपों को सुनकर कहा—"मैं चाण्डाल कन्या प्रकृति की पूर्व जन्म कथा सुनाता हूँ। सुनिये।"

गंगा तट के एक घने अरण्य में, त्रिशंकु नाम का एक मातंग राजा हुआ करता था। उसने वेद और इतिहास का अध्ययन करके उनके रहस्यों का जाना। उसका ज्ञान अपार था।

इस मातंग राजा त्रिशंकु के एक बहुत ही सुन्दर लड़का था, जिसका नाम शार्दूल कर्ण था। उसने पिता से वेद, वेदान्ग इतिहास शास्त्र आदि, सीखे। जब वह शीलवान गुणवान पंडित बन गया तो त्रिशंकु उसके योग्य कन्या ढूँढ़ने लगा।

उत्कृट ब्राह्मण बस्ती के पालक पुष्करसारी नाम के ब्राह्मण के प्रकृति नाम की सुन्दर कन्या थी। सौन्दर्य के साथ साथ उसमें गुण और शील भी थे। उस लड़की को अपनी बहू बनाने के लिए त्रिशंकु अपने

मातंग परिवार के साथ निकला और ब्राह्मण बस्ती के पास के उद्यान में उसने पड़ाव किया। पुष्करसारी रोज वहाँ आकर अपने शिष्यों से अध्ययन करवाता था।

पुष्करसारी भी एक रथ पर सवार होकर, पाँच सौ शिष्यों के साथ उत्कूट के उद्यान में आया। त्रिशंकु ने उसकी अगवानी की। "मैं आप से यह प्रार्थना करने आया हूँ कि आप कृपया मेरे पुत्र शार्दूल कर्ण की पत्नी बनने के लिए अपनी लड़की प्रकृति को दें। आपके वंश के अनुकूल मैं भेंट देने के लिए तैयार हूँ।" त्रिशंकु ने कहा।

एक मातंग का इस प्रकार उससे कहना, पुष्करसारी ने अपने लिए अपमान समझा। उसे बड़ा गुस्सा आया। "छी, अज्ञानी, चाण्डाल, मुझ जैसे वेद पारंगत ब्राह्मण का इस प्रकार अपमान करते हो। तुम ऐसी चीज़ माँग रही हो, जो नहीं दी जा सकती। सोने और राख में जितना भेद है, रोशनी और अन्धेरे में जितना फर्क है, उतना ही उत्तम कुल में पैदा हुए मुझ में और चाण्डाल कुल में पैदा हुए तुम में

अन्तर है। मुझ से रिश्ता करना, तुम्हारे लिए खतरनाक है।"

त्रिशंकु ने उसका उत्तर यूँ दिया। "सोने और राख का भेद, रोशनी और अन्धेरा का भेद सबको मालूम है, सब देख सकते हैं। परन्तु इस प्रकार का भेद ब्राह्मण और, और किसी जाति के आदमी में नहीं दिखाई देता है। ब्राह्मण आकाश से नहीं उतरा है, न वह भूमि को फोड़कर ही निकला है। न वह पलाश के टकराने से अग्नि की तरह ही पैदा हुआ है। वह भी औरों की तरह ही पैदा हुआ है। मर जाने पर ब्राह्मण को भी छोड़ देते हैं। उससे दूर रहते हैं। छूने पर स्नान करते हैं।" उसने कहा। सब मानव शरीर एक ही तरह बनते हैं। एक वर्ण ब्रह्मा ने ऊँचा बनाया और दूसरा नीचा, यह सोचना मूर्खता है। गौ, भेड़, पक्षी, आदि जिस प्रकार अलग अलग जाति के हैं, उस प्रकार मानवों की जाति नहीं है। चारों वर्णों का भेद संकेत-मात्र है, मनुष्यों ने ही उन्हें अपनी सुविधा के लिए बनाया है। मानवों में मनःशुद्धि प्राप्त करके कुछ ब्राह्मण कहलाये। भूमि को हस्तगत करके,

"क्षेत्रों" के अधिपति होकर कुछ क्षत्रिय कहलाये। उसी प्रकार अपनी अपनी आजीविका के अनुसार कुछ वैश्य, कुछ कर्षक, कुछ शूद्र कुछ मातंग आदि कहलाये।" त्रिशंकु ने बताया।

उसका ज्ञान और विद्वत्ता को देखकर पुष्करसारी चकित रह गया। पुष्करसारी ने उससे कई प्रश्न किये। त्रिशंकु ने उन सब का उत्तर दिया। "हे ब्राह्मण, पहिले कभी देवताओं में श्रेष्ठ ब्रह्मा था। वह ब्रह्मा मैं ही हूँ। मैं ही कौशिक इन्द्र बना। फिर अरणोमि गौतम बना। उसके बाद श्वेतकेतु महर्षि बना। उसके बाद शुक पंडित बनकर मैंने वेदों को चार भागों में विभक्त किया।

यह सुनकर पुष्करसारी ने कहा—"त्रिशंकु, तुम परम ज्ञानी हो। तुम्हारे लड़के के साथ मैं अपनी लड़की का विवाह करूँगा।"

जब यह बात उनके गुरु के मुँह से निकली तो उनके पाँच सौ शिष्यों ने चिल्लाकर कहा—"जब इतने सारे ब्राह्मण हैं, तो आप अपनी लड़की को एक चाण्डाल को क्यों देते हैं? परन्तु पुष्करसारी ने उनको चुप रहने के लिए कहा—"त्रिशंकु ने जो कहा है वह ठीक है, उचित है। वास्तविक है।"

बुद्ध ने अपने शिष्यों को यह कथा सुनाकर कहा—"अरे भिक्खुओ! मैं ही वह त्रिशंकु हूँ। आनन्द उन दिनों का शार्दूल कर्ण है। तब की प्रकृति ही यह प्रकृति है। उसे अपने पूर्व जन्म के पति पर अब भी प्रेम बना हुआ है। मैंने उसे ज्ञान दिया है।"

रास्ते में मिला चित्र

एक दिन पन्नालाल काम से बस्ती जा रहा था कि उसे एक गाँव के पास रास्ते के पास लक्ष्मी एक चित्र दिखाई दिया। उसे उठाकर धूल झाड़कर देखा। उसे पूजा के लिए किसी ने बनाया था। पीले रंग के लिए हल्दी का, लाल रंग के लिए सिन्दूर का, नीले और काले रंग के लिए स्याहियों का उपयोग किया गया था।

यह चतुर चित्रकार द्वारा भले ही न बनाया गया हो, पर चित्र देखने में सुन्दर ही था। जिस चित्र को इतनी मेहनत से बनाया गया था, न मालूम कितनों ने ही उसे अपने पैरों के नीचे रौंदा होगा, यह सोच पन्नालाल बड़ा दुखी हुआ। वह उसे अपने साथ कस्बे ले गया। और उसने उस पर चौखट लगवायी।

कस्बे में काम हो जाने पर पन्नालाल घर की ओर आ रहा था कि रास्ते में उसे एक पेड़ के नीचे एक बूढ़ा अन्धा और उसकी बूढ़ी पत्नी बैठे दिखाई दिये। वे वहाँ बैठे बैठे भीख माँग रहे थे।

पन्नालाल को देखकर बुढ़िया ने कहा—"बूढ़ा अभी बीमार होकर उठा है। इसे माँड़ दूँगी। दो चार पैसे दीजिए।"

पन्नालाल ने अपनी जेब टटोली, तो उसमें दमड़ी भी न थी। जो थोड़ा बहुत पैसा उसके पास था, उससे उसने चित्र के लिए चौखट बँधवाया था और जो बचा था उसे इधर उधर के लोगों को उसने दान कर दिया था।

"मेरे पास कुछ नहीं है....अगर मैं अपनी अंगुली की अंगूठी दूँ तो क्या कुछ काम बनेगा?" पन्नालाल ने कहा।

काफी पैसा मिल गया। उनकी झोंपड़ी वहीं कहीं आस पास थी। रोज़ बुढ़िया, बूढ़े को उस पेड़ के नीचे बिठा देती और उसके पास लक्ष्मी के चित्र को रख देती। लगता था, जैसे लक्ष्मी देवी की उन पर कृपा हो गई हो। उससे पहिले कभी एक समय आधा पेट खाते, तो दूसरे समय भूखे पड़े रहते। पर अब हर कोई लक्ष्मी के चित्र के सामने हाथ जोड़ता और अन्धे को कुछ दे दाकर चला जाता।

दो तीन दिन इस तरह गुज़र जाने के बाद, एक पन्द्रह वर्ष का लड़का उस तरफ़ आया। उस चित्र को देखकर उसने अन्धे से पूछा—"यह चित्र तुम्हें कैसे मिला?"

अन्धे ने डरते हुए पूछा—"बेटा, तुम कौन हो? किसी धर्मात्मा ने मुझे यह भीख में दी थी। यह हमारा पालन पोषण कर रहा है। तुम भी कुछ दान देते जाओ....तुम्हारा पुण्य होगा।"

"यह मेरा चित्र है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। किसी ने इस पर अच्छी-सी चौखट भी लगा दी है।" उस लड़के को कहता देख, बूढ़ा और भी डरा। उसने

बुढ़िया ने उसे पहिचानकर कहा—"तुम पन्नालाल हो न? क्या सोने की अंगूठी हम जैसों को मिलेगी? कोई और छोटी-सी चीज़ दो? तुम जो भी कुछ दोगे, वह हमारे लिए बहुत है।"

"सिवाय इस लक्ष्मी के चित्र के मेरे पास और कुछ नहीं है।" पन्नालाल ने कहा।

"वही दे दो। पूजा करते हम भीख माँगेंगे।" बुढ़िया ने कहा। बूढ़े ने भी वही कहा। पन्नालाल उनको वह चित्र देकर घर चला आया। सौभाग्य से उनको

अपनी पत्नी को बुलाया—"ज़रा इधर तो आओ। यह शरारती लड़का मालूम होता है, कहीं चित्र न उठा ले जाये। देखते रहो।"

बूढ़ा अभी कह ही रहा था कि वह लड़का, वह चित्र उठाकर भाग गया। बूढ़िया ने आकर देखा तो चित्र गायब था। पति-पत्नी खूब रोये धोये।

सचमुच उस लक्ष्मी का चित्र उस लड़के ने ही बनाया था। चित्र में एक कोने में उसने अपना नाम भी लिख रखा था। उसका नाम राम था। उसे चित्र बनाने का शौक था। पढ़ाई लिखाई छोड़कर वह हमेशा चित्र बनाया करता। उसका पिता व्यापारी था। राम को पिता की तरह व्यापार में भी दिलचस्पी न थी।

वह यदि यूँ ऊँटपटाँग चित्र बनाता रहा, तो कहीं का भी न रहेगा, यह सोच राम के पिता ने, अपने लड़के द्वारा बनाये गये चित्र को और उसकी चीज़ों को उठाकर, गुस्से में दूर फेंक दिया। राम के पिता द्वारा फेंका गया लक्ष्मी का चित्र ही पन्नालाल को रास्ते के पास मिला था।
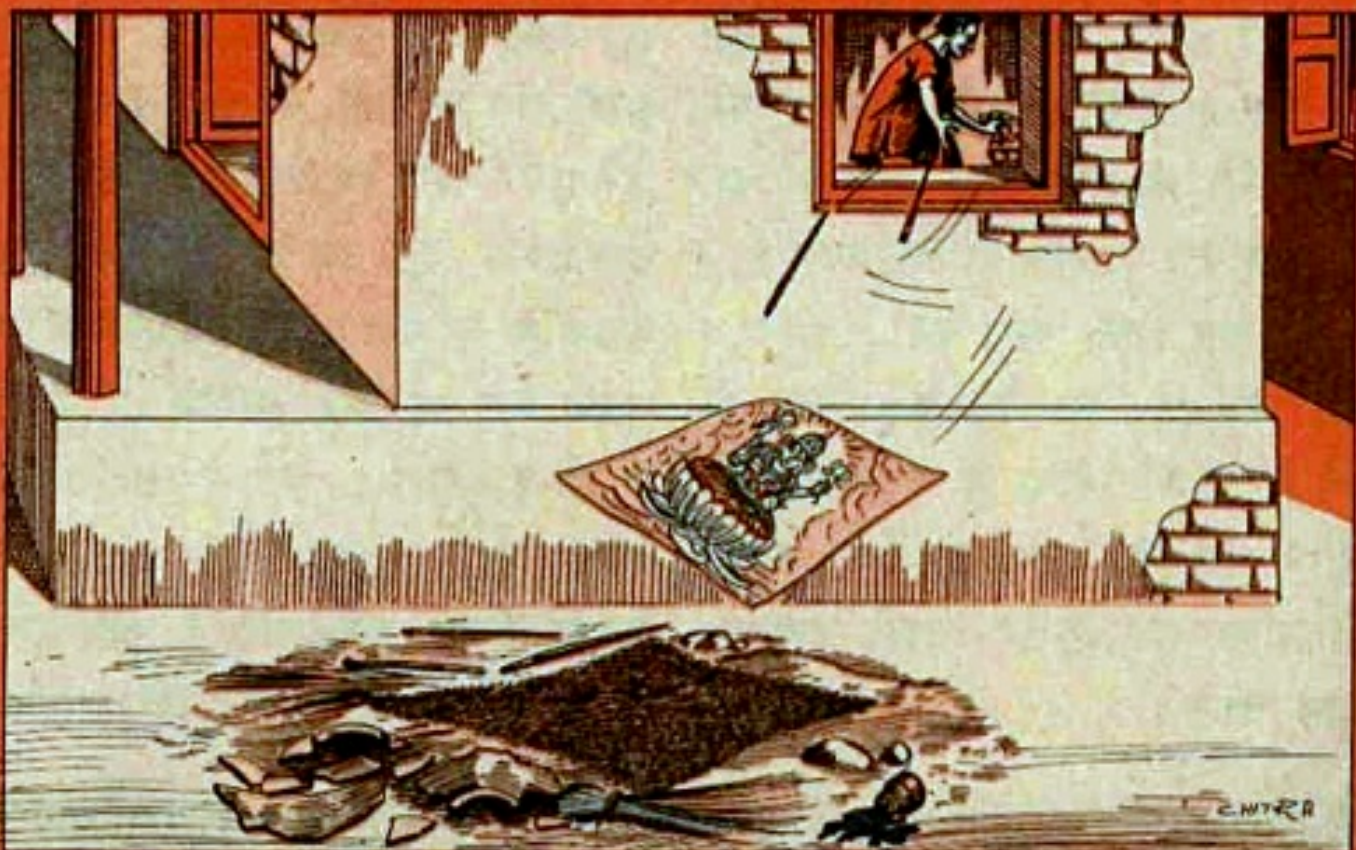
"नहीं पिता जी! मैंने पैसे नहीं चुराये हैं।" राम ने कहा। वह पिता से कैसे कहे कि वह अन्धे भिखारी के पास से उसे चुरा लाया था। वह सुनकर पिता और गुस्सा होता। इसलिए राम ने कहा—"इसे कोई ले गया था। इस पर चौखट लगाकर, इसकी पूजा कर रहा था। इस चित्र की पूजा करने से, सुनते हैं, काफ़ी फायदा होता है। जब मैंने कहा कि यह चित्र मैंने ही बनाया था, तो उन्होंने मुझे यह दे दिया। यदि इसे घर में रखकर, हमने इसकी पूजा की, तो हमारा भी बड़ा लाभ होगा।"

चौखट लगे हुए चित्र को लेकर, राम घर गया। उसने उसको कहीं छुपाकर रख देना चाहा परन्तु पिता ने उसे देख ही लिया। उसने गुस्से में कहा—"अबे पगले, मैंने जो चित्र फेंक दिया था, उस पर अब तुम चौखट भी लगा लाये हो? तुम्हारे पास इतना रुपया कहाँ से आया? मेरी जेब में जब पैसे कुछ कम हो गये थे, तो मैंने सोचा कि वे क्या हो गये थे। अब पता लगा। जेबें काटना भी सीख गये हो?" उसने राम के कान पकड़े।

"तो जाओ, जितना इससे लाभ होता हो, उतना लाभ लेकर आओ। यदि तुम खाली हाथ घर आये, तो तुम्हें खाना नहीं मिलेगा।" कहते हुए पिता ने राम को घर से भेज दिया। राम उस चित्र को लेकर कुछ धनियों के घर गया। उसने उनसे पूछा—"क्या आप यह चित्र खरीदेंगे?" किसी ने उसे न खरीदा। कई ने उस चित्र को देखकर कहा—"जा, जा!" कई उसे देखकर हँसे। कई और ने कहा मुफ्त भी अगर दोगे, तो भी हमें नहीं चाहिये।

राम उस चित्र को बेचता बेचता, पन्नालाल के घर भी आया। पन्नालाल ने उस चित्र को देखकर पूछा—"यह तुम्हें कहाँ मिला?"

"इस चित्र को मैंने ही बनाया है। मेरे पिता जी ने उसे फेंक दिया था। यह न मालूम कैसे एक अन्धे भिखारी को मिला? जब मैंने अपना चित्र माँगा और उसने न दिया, तो मैं इसे उठा ले आया और मेरे पिता ने सोचा कि मैंने उनके पैसे चुराकर, उनसे यह चौखट लगवाया है और उन्होंने मुझे घर से यह कहकर निकाल दिया कि बिना पैसा लिये घर न वापिस आना।" राम ने अपनी सारी बात पन्नालाल से कही।

"चित्र में जो राम लिखा है, वह क्या तेरा ही नाम है?" पन्नालाल ने पूछा।

"जी हाँ, मुझे चित्र बनाने का शौक है और इस बात पर मेरे पिता खौफ खाये हुए हैं।" राम ने कहा।

"तेरे चित्र पर चौखट मैंने लगवाई थी। मैं ही इसे पाँच रुपये में खरीदूँगा। वह पैसा ले जाकर अपने पिता को दो।" कहकर पन्नालाल ने राम के हाथ में पाँच रुपये रखे। फिर पन्नालाल ने उस चित्र को ले जाकर, बूढ़े बुढ़िया को दिया। उनको बताया कि उसे फिर कोई नहीं ले जायेगा। उसके बाद, उसने राम के घर जाकर, उसके पिता से कहा—"तुम्हारे लड़के को चित्रकला में बड़ी अभिरुचि है। उसे मेरे साथ भेजो।"

उसे राजा की चित्रशाला में भरती करवाकर, चित्रकला सिखवाऊँगा। यह अच्छा चित्रकार बनेगा, यूँ समझाकर उसने उसको मनाया।

ग्रन्थों का दिवाना
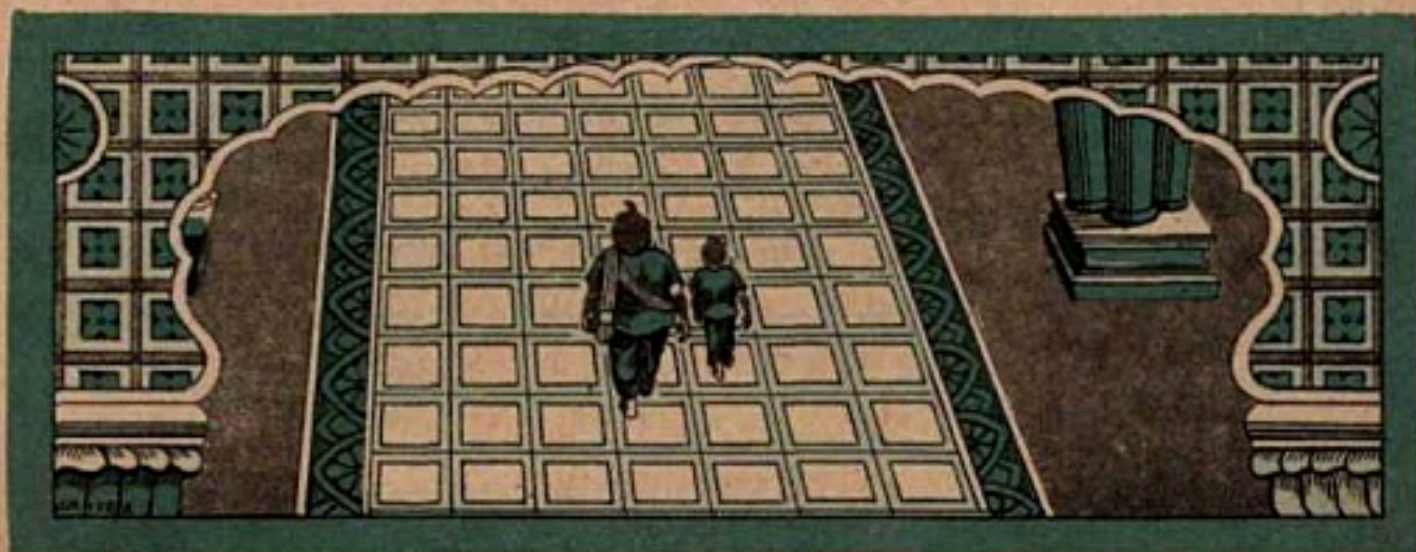
एक गाँव में एक बढ़ई युवक रहा करता था। उसका नाम गणपति था। वह थोड़ा बहुत पढ़ा लिखा तो था, पर उसके पास संपत्ति न थी। वह मेहनत करता और अपने पेशे से अपना और अपनी बूढ़ी माँ का भरण-पोषण करता। इतने में उसका एक सम्बन्धी बिना सन्तान के मर गया और उस सम्बन्धी की सारी सम्पत्ति गणपति को मिल गई। उसे लगा कि दिन भर खून पसीना एक करने की अब कोई ज़रूरत न थी। उसने अपनी माँ से कहा—"माँ, हम अब तक सुख किसको कहते हैं, नहीं जानते। अब चूँकि हमारे पास धन है, इसलिए अच्छा मकान खरीदकर, अच्छे कपड़े पहिनकर, अच्छा खाना क्यों न खायें?

माँ जानती थी कि गणपति थोड़ा-सा पगला था। इसलिए उसने कहा—"बेटे, कुछ पैसा मिल गया है, इसलिए क्यों तुम अच्छा पेशा छोड़ते हो? चाहो तो मकान खरीद लो। ज़मीन जायदाद भी लो, पर काम न छोड़ो।"

माता के कहे अनुसार गणपति ने एक मकान खरीदा। उसने अपना पेशा न छोड़ा, परन्तु कम समय काम करके अधिक समय पढ़ने लिखने में लगाने का निश्चय किया। वह थोड़ा बहुत पढ़ना लिखना जानता था, पर कभी उसने एक पुस्तक न पढ़ी थी, यह सोच उसे दुख होता। इस कमी को पूरा करने के लिए गणपति, गाँव के अध्यापक के पास गया और उससे उसने एक पुस्तक माँगी। अध्यापक ने उसे

नरेश अवस्थी

विक्रमार्क की कथाओं की पुस्तक दी। जब तक वह उसे पूरी तरह न पढ़ गया तब तक गणपति ने और कोई काम न किया। ज्यों ज्यों वह उन कहानियों का पढ़ता जाता था, उसका मज़ा भी बढ़ता जाता था।

विक्रमार्क की कथाओं को पढ़ने के बाद, गणपति ने सोचा क्या अच्छा हो यदि वह भी विक्रमार्क की तरह भूत बेताल से दोस्ती कर सके। प्रायः सभी भूत के नाम से डरते हैं। वह कायरता है। दोस्ती करने पर भूतों से कितने ही काम करवाये जा सकते हैं। गणपति ने भूतों का परिचय पाने की ठानी। पर यह कैसे सम्भव था। गणपति ने कभी भी जीवन में एक भूत तक न देखा था। वह हर किसी परिचित से पूछता—"क्या तुमने कभी भूतों को देखा है?" पर एक ने भी न कहा कि उसने भूत देखा था।

गणपति के गाँव में एक शरारती लड़का था। वह देख रहा था कि जब से गणपति को सम्पत्ति मिली थी, तब से वह ऐंटी में पैसे की थैली रखे घूम रहा था। उसकी नज़र उस पर थी। जब उसे मालूम हुआ कि गणपति भूतों के बारे में जानने

के लिए उतावला हो रहा था, तो उसे एक चाल सूझी।

एक दिन गणपति गली में जा रहा था कि उसे वह शरारती दिखाई दिया। क्यों भाई, लोग कह रहे हैं कि तुमने भूत को देखा है? क्या यह सच है?"

"अगर भूत दीख जायें तो कमी ही किस बात की है?" गणपति ने पूछा।

"अगर तुम देखना ही चाहो तो भूतों की क्या कमी है? आधी रात के समय श्मशान की ओर गये, तो तुम्हें बेशुमार भूत दिखाई देंगे।" शरारती लड़के ने कहा।

"हाँ....भाई मुझे यह बात न सूझी थी।" गणपति ने खुश होते हुए कहा।

उस दिन रात को, माँ को बिना बताये वह घर छोड़कर श्मशान में पहुँचा। वहाँ उसे समाधियों के बीच में एक सफ़ेद-सी आकृति दिखाई दी। उसने सोचा—"और यह भूत ही होगा।" उसने उसके पास जाकर पूछा—"तुम भूत हो, प्रेत हो, या पिशाच, या बेताल?"

वह आकृति न बोली। गणपति ने भूत के पास जाकर, उसके हाथ छूते हुए कहा—"मैं तुम से दोस्ती करने आया हूँ। क्यों, बोलते क्यों नहीं हो?"

शरारती लड़का सफेद कपड़ा ओढ़े समाधियों के बीच गणपति की इन्तज़ार करता खड़ा था। गणपति ज्योंहि पास आया, त्योंहि उसने अपना शाल उस पर डाल दिया। गणपति की ऍंटी में से थैली निकाली। उसे धक्का देकर वह चम्पत हो गया।

गणपति को इस बात की फ़िक्र न थी कि वह अपनी थैली खो बैठा था। वह इस खुशी में था कि उसने भूत देख लिया था। उसने अगले दिन सवेरे अपनी माँ से कहा—"माँ, मैंने रात को भूत देखा था। यह देखो उसका कपड़ा। उसकी आँखों में धूल झोंककर इसे ले आया हूँ। पर इस गड़बड़ी में, मैं अपनी थैली खो बैठा।" उसने जो कुछ हुआ था, वह सब बताया।

गणपति की माँ आखिर जान गई कि क्या हुआ था? यदि वह कहती कि उसने भूत न देखा था, तो उसके मन को बड़ी चोट लगती। "पगले! यदि भूत ने बात न की थी, तो क्या उसका कपड़ा लाते हैं....उसको तुम्हें दो चार चपत जमाने चाहिए थे।"

गणपति को यह बात जंची। यदि भूत दोस्ती करने के लिए नहीं मानता है, तो उसे जबर्दस्ती मनवाना होगा। इसलिए वह अगले दिन रात को फिर श्मशान गया। बादलों के कारण और भी अन्धेरा था। उस घने अन्धकार में, उसे ऐसा लगा, जैसे कोई भूत खड़ा हो। गणपति ने उसके पास जाकर बातचीत शुरु की। पर भूत न बोला। जैसा कि माँ ने बताया था, उसने उस दो चार मुके मारे। भूत तो नहीं हिला, पर उसके दोनों हाथों में इतनी चोट लगी कि खून बहने लगा। वह जिसे भूत समझ रहा था, वह एक समाधि का पत्थर था।

"पगले कहीं के क्योंकि तुम भूतों को खोजते निकले हो इसलिए वे तुम्हें कुछ समझ नहीं रहे हैं। क्या भूतों को देखने के लिए श्मशान जाना ज़रूरी है? जो भूत तुमसे दोस्ती करना चाहता है, क्या वह तुम्हें खोजता घर नहीं आयेगा? तुम कहीं न जाओ। घर में ही रहो। अगर तुम्हारे लिए भूत घर में आये, तो ज़रा ऐंठकर रहना। चादर तानकर सो जाओ। कुछ पूछे, तो कुछ न बोलना।"
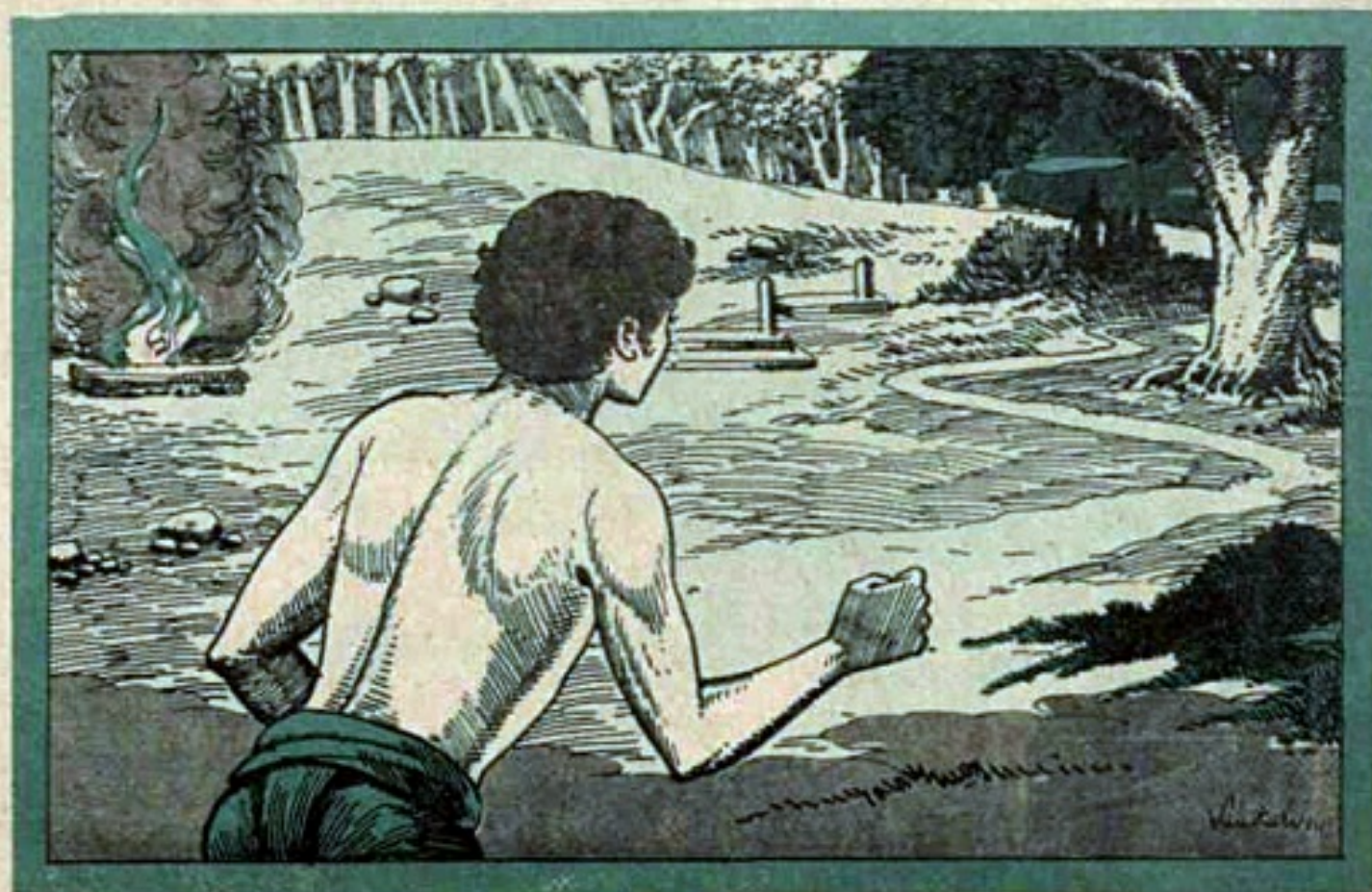
गणपति को माँ की यह सलाह भी खूब जंची। यह सोचकर कि रात को अगर भूत आया, तो माँ की नींद भंग होगी, उसने अलग सामने के बरान्डे में अपनी खाट डाल ली और वहीं लेट गया।

वह लेट तो गया, पर उसे नींद न आई और भूत भी न आया। रात के तीसरे पहर उसे नीन्द आई। उसी समय न मालूम कैसे गणपति के घर में आग लग गई। गणपति के मकान के पास रहनेवाले लुहार ने यह देखा और वह भागा भागा गणपति के घर गया। "गणपति गणपति" कहकर उसे उठाया।

गणपति ने नीन्द में आँखें आधी खोलकर देखा। उसने लुहार को न पहिचाना। यह सोच कि भूत आया था, उसने यूँ दिखाया जैसे सो रहा हो।

"अरे, इधर घर जल रहा है और तुम सो रहे हो। उठो।" लुहार ने कहा।

"अरे हटो, ऐसी बात हमारे सामने नहीं चलेगी।" यह सोचकर गणपति खुर्राटे मारने लगा। "खैर, तेरी इच्छा, अगर तुम घर के साथ खुद जलना चाहो, तो तुम्हारी मर्ज़ी।" कहकर लुहार चला गया।

इतने में गणपति की माँ चिल्लाई। "अरे, उठ, गणपति। घर जल रहा है।" माँ का चिल्लाना सुनकर, जब गणपति उठा, तो आधा घर जल ही चुका था।

धन की थैली के साथ खरीदा हुआ घर भी जब खाक हो गया, तो गणपति जैसे पहिला था, फिर वैसा ही हो गया। उसी जगह उसने अपने लिए एक झोंपड़ी बना ली और फिर मेहनत करके, बढ़ई का काम करके, अपना और अपनी माँ का पेट भरने लगा।

कृष्णावतार

मेरुपर्वत की देव सभा से नारद सीधे मथुरा नगर पहुँचा। कंस के महल में पहुँचते ही उसको पहरेदार अन्दर ले गये।

कंस स्वयं उसकी अगवानी करने के लिए आया। उसने बड़े विनय से उसके चरण छुये। उसकी पूजा की।

तब नारद ने सब के सामने कंस की ओर देखकर कहा—"मैं तीर्थ यात्रा करता करता मेरुपर्वत की ओर गया। वहाँ ब्रह्मा आदियों ने एक बड़ी सभा बुला रखी थी। यह सोच कि किसी बड़ी समस्या पर सोचा जा रहा था, मैं भी वह कुछ देर खड़ा रहा। क्या बताऊँ? वे सब मिलकर तुम्हें मारने की सोच रहे हैं। तुम्हारे ताये की लड़की देवकी है न? उसका आठवाँ लड़का, कह रहे हैं, तुम्हारी मृत्यु का कारण होगा। इसलिए तुम आवश्यक प्रबन्ध कर लो कि तुम्हारे जीवन की हानि न हो। बिना धर्म से विचलित हुए सुख से जीओ। क्योंकि मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ इसलिए यह बात तुम्हें बताने आ गया। अब मैं चला।" यह कहकर वह चला गया।

बाद में कंस ने अपने भृत्यों से मुस्कराते मुस्कराते कहा—"यह सोच कि

२. कृष्ण का जन्म

अक़्मन्द है, मैं नारद का आदर करता आया था। पर यह मुझ जैसे शक्तिशाली को ही डरा रहा है? न मुझे ब्रह्मा की परवाह है, न और देवताओं की ही। अगर मुझे गुस्सा आ गया, तो दिक्पालकों तक को एक मुके में चूरा चूरा कर दूँगा। चाहे पहाड़ गिरें या समुद्र सूख जाये, तो भी मैं झुकनेवाला नहीं हूँ। खैर, इस नारद का न मुँह चुप होता है, न पैर टिकते हैं। जहाँ जहाँ जाता है एक दूसरे की चुगली करता है, झगड़े पैदा करता है और खुद तमाशा देखता है। पर चूँकि यह कह रहा है कि खतरा यादव वंशवालों से है इसलिए सावधान होकर, मुझे सब शत्रुओं को मारना होगा। भले ही वे माता के पेट में हों। जब तक मैं हूँ, तब तक मेरे किसी अनुयायी को डरने की ज़रूरत नहीं है। मैं चूँकि हूँ, सब जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं।"

यह कहकर, कंस अपने महल में गया। उसने विश्वस्त लोगों की गुप्त सभा की। सभा में उसने कहा।—"आज से अपनी देवकी देवी का पहरा देने के लिए कई दासियों को नियुक्त करो। वे वसुदेव पर भी निगाह रखें। मुझे यह खबर मिलती रहे कि कब देवकी गर्भवती होती है, कब कौन-सा महीना चल रहा है और कब प्रसव होनेवाला है और दिन रात उस पर पहरा रहे। यह सब क्यों किया जा रहा है, किसी को न मालूम होने पाये।" उसने उसको खबरदार किया।

इस बीच नारद मथुरा नगर से विष्णु के पास आया और उसे बढ़ाचढ़ा कर बताया कि उसने कंस को कैसे भड़काया था और कैसे कैसे वह नीच कार्य करने को उतारू हो रहा था।

नारद के चले जाने के बाद कंस की आँखों में धूल झोंककर, कैसे अवतार लिया जाये, यह विष्णु सोचने लगे। उन्हें एक पुरानी घटना याद हो आयी। पाताल में कालनेमि के छः लड़के हुआ करते थे। उन्होंने मृत्यु से बचने के लिए ब्रह्मा से वर प्राप्त करने के लिए तपस्या शुरु की। उसी समय तीनों लोकों पर हिरण्यकश्यपु का अधिकार था। जब उसको यह मालूम हुआ, तो उसने शाप दिया—"जब मैं यहाँ कुलश्रेष्ठ हूँ, तो तुम और किसी से वर पाने की क्यों कोशिश कर रहे हो? जिस पिता ने तुम्हें पाला पोसा है, उसी के हाथ तुम मारे जाओ।"

यह याद आते ही विष्णु ने योग माया को बुलाकर कहा—"मुझे तुमसे कुछ काम है। षडार्य नाम के कालनेमि के छः लड़के हैं। उनमें से एक एक को ले जाकर, देवकी के गर्भ में रखो। उनके पैदा होते ही कंस उनको मार देगा। देवकी के सातवें गर्भ को रोहिणी को दो। सब यही सोचेंगे कि कंस के डर के कारण, सातवीं बार देवकी का गर्भ गिर गया है। वह लड़का मेरे बड़े

आठ हाथों में शारंग, चक्र, गदा, खड्ग, पद्म, मधु कलश, शूल आदि धारण करोगी। दिव्याभरण से अलंकृत साड़ी पहिनोगी और सब देवताओं द्वारा तुम्हारी पूजा होगी।"

योगमाया इसके लिए मान गयी। वह अपनी महिमा के कारण वह देवकी के छहों गर्भ अपने गर्भ में लेती रही। जब प्रसव समय आता, तो कंस के आदमी इसकी सूचना उसको देते। कंस आता और बच्चे को ले जाकर, पत्थर पर पटक कर क्रूरता से मार देता।

भाई के रूप में रोहिणी के पैदा होगा। जब मैं आठवीं लड़की के रूप में देवकी के गर्भ में प्रवेश करूँ, तो तुम नन्द की पत्नी यशोदा के गर्भ में प्रवेश करो। हम दोनों आधी रात के समय पैदा होंगे और एक दूसरे से स्थान बदल लेंगे। इसके बाद, जब कंस पत्थर पर पटक कर तुम्हें मारने की कोशिश करे, तो तुम आकाश की ओर उड़ जाना। तब तुम्हें इन्द्र मिलेगा और तुम्हें आदिशक्ति के रूप में अभिषिक्त करेगा। नीला मेघ का-सा रंग होगा तुम्हारा, चन्द्रमा-सा मुँह।

देवकी देवी जब सातवीं बार गर्भवती हुई योगमाया ने उस गर्भ को ले जाकर गोकुल में रहनेवाली रोहिणी के गर्भ में रखा।

रोहिणी ने ठीक समय बाद, चन्द्र के समान लड़के को जन्म दिया। यही बलराम था।

बलराम के पैदा होने के बाद, देवकी के आठवीं बार गर्भ हुआ। उसमें विष्णु का अंश प्रविष्ट हुआ। और उसी दिन गोकुल में नन्द की पत्नी यशोदा भी गर्भवती हुई।

नौ महीने गुज़र गये। दसवाँ महीना आया। श्रावण मास में, कृष्ण पक्ष में अष्टमी के दिन, आधी रात के समय, विष्णु का अंश कृष्ण का जन्म हुआ।

उस समय, सिवाय देवकी और वसुदेव के कोई नहीं जागा हुआ था। पहरेदार, गाढ़ी निद्रा में शवों की तरह पड़े हुए थे। यह सोच कि उसके लड़का हुआ था वसुदेव उसी समय देवकी के पास गया। वहाँ ऐसा लगा जैसे चन्द्रमा का उदय हुआ हो। लड़के का रंग बादल का-सा था। कहीं शरीर पर कोई दाग न था। न मलीनता ही थी। आँखें खोलकर वह देख रहा था।

"दुष्ट कंस जब इसको मारेगा, तब मैं कैसे वह देख सकूँगा ! इसे ले जाकर, अभी कहीं छुपा दूँगा।" वसुदेव ने मन ही मन सोचा।

देवकी ने, बिना किसी प्रसव वेदना के उस लड़के को जन्म दिया था। परन्तु उसे न सूझा कि अब क्या किया जाये।

वसुदेव ने अपने विचार के बारे में उसे बताया। लड़के को उसकी गोद से अपने हाथ में लेकर, जल्दी जल्दी अन्तःपुर से बाहर निकल आया और सीधे नन्द के घर गया।

वहाँ यशोदा ने तभी एक लड़की को जन्म दिया था और सुध खोये सो रही थी। वसुदेव उसकी बगल में लड़के को लेकर, अपने घर गया। उसे देवकी की बगल में रख दिया और कंस को जाकर बता दिया कि देवकी के प्रसव हुआ था, कंस घबराता नींद से उठा। जल्दी जल्दी भागा भागा आया। प्रसव गृह के सामने खड़े होकर वह चिल्लाया—"बच्चे को इधर दो।"

देवकी ने उस बच्चे को छाती पर लगाते हुए कहा—"भाई, गुस्सा न करो। इस बार लड़की हुई है। तुम जैसे वीर का यह लड़की भला क्या बिगाड़ेगी? इसकी रक्षा करो। इससे पहिले सब लड़के हुए थे, न मालूम उनसे तुम्हारी क्या हानि हो, यह सोचकर, मैंने तुम्हें न रोका था। इस बार मुझ पर दया करो।"

कंस ने उसकी न सुनी। वह जब प्रसव गृह में घुस रहा था, तो पहरे पर रखी गईं स्त्रियाँ सब ज़ोर से चिल्लाईं। उसने जबर्दस्ती देवकी के हाथ से बच्चा ले लिया और हमेशा की तरह, उसे पत्थर पर पटकने के लिए ऊपर उठाया। ऊपर उठायी गयी, वह लड़की कंस के हाथ से फिसल गयी, ऊपर उठ गयी। आदिशक्ति का रूप धारण करके वह आकाश में खड़ी हो गयी।

पान कलश से, उसने मधु पिया। अट्टहास करते हुए, कंस को देखकर कहा—"अरे दुष्ट कहीं का। तुमने चूँकि मुझे पत्थर पर पटक कर मारने की कोशिश की थी इसलिए जब तुम्हारा शत्रु तुम्हें मार रहा होगा, तब मृत्यु के रूप में मैं आऊँगी। तब मैं तुम्हारे प्राण और खून पीऊँगी। अब क्या देखते हो, तुम्हें मारनेवाला पहिले ही पैदा हो चुका है।" कहकर वह अदृश्य हो गयी।

तुरत कंस देवकी देवी के पास आया। हाथ जोड़कर उसने कहा—"प्राण के भय से मैंने बड़ा पाप किया है। तुम्हारे सब बच्चों को मारकर मैंने तुमको बड़ा दुःख पहुँचाया है। तब भी मेरा काम न बना। मानव प्रयत्न से क्या विधि का लिखा

बदला जा सकता है ! हम तो निमित्त मात्र हैं, मारने जिलानेवाला काल पुरुष है। इसलिए तुम अपना दुःख छोड़ दो। तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ।"

देवकी ने रोते हुए कहा—"जब मेरे भाग्य में यह शोक लिखा है, तब तुम भला क्या कर सकते हो ?" कंस को समझाकर उसने भेज दिया।

सवेरा होने से पहिले ही वसुदेव, नन्द के घर गया। नन्द लड़के के जन्म की खुशियाँ मना रहा था।

उसे देखकर, वसुदेव ने कहा—"वाह भाई, क्या सुन्दर लड़का हुआ है। भाग्यवाले हो, इस लड़के को लेकर अपने गोकुल जाओ। वहाँ मेरी पत्नी रोहिणी के एक लड़का है ही। उसे बड़ा लड़का मानना और इसे छोटा, दोनों को पालना पोसना। उस जंगल में देखना, इन्हें कोई कमी न हो। पापी कंस ने देवकी के सब बच्चों को मार दिया है। रोहिणी के भाग्य में ही बच्चे थे। उनके पालन-पोषण का भार तुम पर है। कंस ने पूतना को बच्चों को मारने के लिए नियुक्त किया है। वह बच्चों को खोज रही है। सवेरा होने से पहिले ही तुम चले जाओ। तुम शहर में कर देने ही तो आये थे। वह काम भी हो गया है। इसलिए बिना देरी किये तुम चले जाओ।"

वसुदेव के यह कहते ही नन्द ने बच्चे को एक टोकरे में रखकर, अपनी पत्नी के साथ ठिगने बैलों की एक गाड़ी में बैठकर, तेज़ी से उस ओर चल दिया, यहाँ उसकी गौव्वे चर रही थीं।

अरण्य पुराण

[५]

मौवली जंगल पार करके सायंकाल के समय, गुफ़ा के पास पहुँचा। गुफ़ा के अन्दर भेड़ियानी ने मौवली की साँस सुनी। उसने अनुमान किया कि उसके मौवली को कोई चीज़ सता रही है।

"लोग शेरखान के बारे में कुछ कहते लगते हैं। आज रात को, मैं शिकार के लिए खेतों में जा रहा हूँ।" कहता मौवली पहाड़ के नीचे भागा। नीचे घाटी के नाले के पास गया। जब झुण्ड के शिकार करने की आवाज सुनाई दी, तो वह रुक गया। हरिण का चिल्लाना सुनाई दिया। ऐसा लग रहा था, जैसे वह कहीं फँस गया हो। युवक भेड़ियों की आवाज सुनाई दी। "अकेला....अकेला....अपना बल दिखायेगा। सरदार के लिए रास्ता छोड़ो। अकेला आगे आओ।"

यह साफ़ हो गया कि अकेला कूदकर, हरिण को पकड़ नहीं पाया था। अकेले के दान्त कटकटाने की आवाज हुई। हरिण ने जब आगे के पैरों से एक लात मारी तो अकेला चिल्लाने लगा।

मौवली ने और कुछ न सुनना चाहा। वह आगे गया। झुण्ड का शोर और भी बढ़ता जाता था। मौवली खेतों के बीच के झोंपड़ियों के पास पहुँचा। खिड़की के पास भुस के ढेर में घुसकर उसने कहा—"बघेल ने सच कहा था, कल का दिन, मेरे लिए और अकेला के लिए एक ही-सा होगा।"

वह जल्दी ही, खेतों के बीच के गौवों में गया। पर वह वहाँ न रुका। क्योंकि वह तब भी जंगल के पास था। जंगल में उसका एक प्रबल शत्रु था। वह घाटी की चढ़ाई पर, बीस मील तक भागता गया और तब एक ऐसे प्रान्त में पहुँचा, जिससे वह परिचित न था।

वहाँ घाटी खतम हो जाती थी और विशाल मैदान शुरु हो जाता था। उस में जगह जगह टीले थे। मैदान के अन्त में, एक गाँव था और दूसरी तरफ़ घना जंगल था। मैदान में गौ और भैंसे चर रही थीं। उनको चरानेवाले लड़के, मौवली को देखते ही चिल्लाकर, भाग खड़े हुए। गाँव के कुत्ते उसको देखकर भोंकते भोंकते उसके पीछे पड़ गये।

मौवली बड़ा प्यासा था। इसलिए वह गाँव की ओर चल पड़ा। गाँव के द्वार के पास काँटों की मेंढ़ दिखाई दी। रात के समय, उससे द्वार को बन्द कर देते थे और दिन के समय काँटें हटा दिये जाते थे।

"आहा, यानि यहाँ के लोगों को, जंगल के वासियों से भय है।" कहकर मौवली द्वार के पास आकर बैठ गया।

कोई गाँव से बाहर आया। मौवली खड़ा हो गया। मुख खोलकर उसने अंगुली रखकर ईशारा किया कि उसे खाना चाहिये था।

वह आदमी मौवली को देखकर चकित हो गया। पुरोहित का नाम चिल्लाता, वह गली में तेजी से भागा।

गाँव का पुरोहित बड़ा हट्टा कट्टा आदमी था। माथे पर बड़ा-सा सिन्दूर का टीका लगाया करता था। सफेद कपड़े पहिने हुए था, वह कम से कम सौ

आदमियों को लेकर गाँव के द्वार के पास आया। उसके साथ आये हुए लोगों ने मौवली की ओर घूरकर देखा। कई ने बात करने की कोशिश की। कई चिल्लाये।

"इन लोगों को सभ्यता छू तक नहीं गई है। लंगूरों की तरह देख रहे हैं।" सोचते हुए मौवली ने सिर के बाल पीछे की ओर फेंके और गाँववासियों की ओर तरेरने लगा।

"डरने की क्या बात है? उसके हाथ और पैरों पर वह दाग देखो। भेड़ियों ने उसे काटा है। वह भेड़िया आदमी है। जंगल से भाग आया है। बस।" पुरोहित ने कहा।

उसका कहना ठीक था। भेड़ियों के बच्चों ने खेलते खेलते, अनजाने मौवली को काट दिया था। उसके हाथों और पैरों पर कई सारे सफेद दाग थे। परन्तु मौवली ने उनको घाव न समझा था। सचमुच घाव कैसे होता है, यह वह जानता था।

"अरे....अरे....विचारे को भेड़ियों ने काटा है। देखने में अच्छा मालूम होता है। तेरे लड़के को एक शेर पकड़ ले गया था। देख यह ठीक उसी की तरह है। मेसुवा।" तीन चार स्त्रियों ने कहा।

हाथ और पैरों में बीस ताम्बे के कड़े पहिने हुए एक स्त्री ने कहा—"ज़रा देखें तो...." वह आगे बढ़ी। उसने ध्यान से मौवली को देखा। "वह तो नहीं है। वह इससे कहीं दुबला था। पर नाक नक्शा ठीक वही है।"

पुरोहित अक़्लमन्द था। मेसुआ का पति गाँव का बड़ा साहुकार था। इसलिए पुरोहित ने क्षण भर के लिए आकाश की ओर देखा—"जिसे जंगल ने लिया था उसे अब उसने वापिस कर दिया है। बहिन....लड़के को ले लो। सबका

भविष्य जाननेवाले पुरोहित की बात न भूलना।"

यह सब देखकर मौवली को वह परीक्षा याद हो आई जो भेड़ियों ने उसकी ली थी। पर जब वह मनुष्य था, तो उसे मनुष्य बनकर ही रहना होगा।

जब लोगों ने रास्ता दिया, तो वह स्त्री, मौवली को घर ले गई। उस घर में, एक लाख का पलंग। आधे दर्जन ताम्बे के पात्र। एक आले में भगवान की मूर्ति। धान डालने के लिए एक बड़ा हण्डा। दीवार पर एक बड़ा शीशा था।

उसने मौवली को पीने के लिए बहुत-सा दूध और रोटी दी। उसके सिर पर हाथ रखकर, उसने उसकी आँखों में देखा। शायद वह लड़का, जिसे शेर जंगल में घसीट ले गया था, वापिस आ गया हो।

"सत्तू....सत्तू...." उसने उसको, उसके नाम से पुकारा।

मौवली को वह नाम याद न था।

"अरे....तुम्हें याद है, मैंने तुम्हें उस दिन नई चप्पल खरीद कर दी थी।" उसने उसके पैर पकड़े। वे खुर की तरह कड़े थे।

"ये पैर तो ऐसे नहीं मालूम होते, जिन पर कभी चप्पल पहिनी गई हो। तुम सत्तू नहीं हो, फिर भी मेरे लड़के हो।" उसने कहा।

मौवली कभी उससे पहिले छत के नीचे न रहा था। वह घर में घुँट-सा रहा था। उसने घर की छत की ओर देखकर सोचा कि भागने के लिए उस छत में से निकल भागना आसान था। खिड़कियों पर भी चटखनियाँ न थीं। (अभी है)

५९. जेरोनिमोस मठ

लिस्बन (पोर्तुगाल की राजधानी) में, इस मठ की जगह पर एक प्रार्थना मन्दिर था। भारत के लिए रवाना होने से पहिले वास्कोडिगामा ने उसमें प्रार्थना की थी। क्योंकि उसकी यात्रा सफल हो गई थी, इसलिए कृतज्ञता में, पोर्तुगाल के राजा ने यह मठ बनवाया। वास्कोडिगामा की समाधि यहीं पर है।